BIHAR YOGA

विश्व योग सम्मेलन 2013

नव योगेश्वर संवाद

स्वामी गिरीशानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

नव योगेश्वर संवाद

ॐ, प्रेम, मंगलम्

स्वामी निरंजन

नव योगेश्वर संवाद

स्वामी गिरीशानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय के स्वर्ण जयन्ती समारोह एवं
विश्व योग सम्मेलन 2013 के अवसर पर दिए प्रवचनों का संकलन



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रथम प्रकाशन 2014

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक—एजीएन ऑफसेट प्रिंटर्स,
ग्रेटर नोएडा

वेबसाइट: www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.in



सविनय समर्पण

श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी गिरीशानन्द जी को
आध्यात्मिक जीवन में दीक्षित और प्रेरित किया



सविनय समर्पण

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी गिरीशानन्द जी को
संन्यास परम्परा और जीवनशैली में दीक्षित किया

विषय सूची

भागवत धर्म और सेवा योग

23 अक्टूबर 2013

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिम्
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्॥

बर्हापीडं नटवरवपु: कर्णयो: कर्णिकारं
बिभ्रद् वास: कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै:
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्ति:॥

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्यादिहेतवे।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुम:॥

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥

परमपूज्य प्रात:स्मरणीय श्री सद्‌गुरुदेव भगवान के श्रीचरणारविन्दों में साष्टांग प्रणाम। परमश्रद्धेय श्री स्वामी निरंजनानंद जी महाराज, परम आदरणीय श्री स्वामी मुक्तानन्द जी महाराज, पूज्य सन्तवृन्द, इस कार्यक्रम में आये हुए श्रीगुरुचरणानुरागी सभी भक्तवृंद, हम सभी लोग श्री गुरुदेव की परम अनुकंपा से, स्वामी निरंजनानंद जी की करुणा और प्रयास से इस विश्व योग सम्मेलन में सम्मिलित हुए हैं। मुझे परमपूज्य प्रात:स्मरणीय स्वामी सत्यानन्द



जी महाराज का रिखियापीठ में भागवत कथा के समापन पर बहुत करुणामय आशीर्वाद प्राप्त हुआ, और उन्होंने बहुत कृपापूर्वक अपने बीस वर्ष के नियम को बाधित कर मुझे संन्यास परम्परा में दीक्षित किया। उनकी इस करुणा के लिए मैं बार-बार उनके चरणों में प्रणाम करता हूँ और नमन करता हूँ। संन्यास विधि की पूर्णता के लिए विरजा हवन इत्यादि जो उस समय सम्पन्न नहीं हो सका था, वह माँ नर्मदा के पावन तट पर जबलपुर में एकादश संन्यासी महापुरुषों के पावन सान्निध्य में स्वामी निरंजनानन्द जी द्वारा सम्पन्न हुआ था, उनकी इस कृपा के लिए मैं उनके चरणों में भी बारम्बार प्रणाम करता हूँ।



हम सभी लोग परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी की पावन योगभूमि मुंगेर में हैं, जो उनकी करुणा का एक प्रसाद है। मुंगेर जैसी जगह में ऐसे महापुरुष का आगमन, ईश्वर की विशेष कृपा और उस क्षेत्रवासियों के पुण्य का उदय है, ऐसा मुझे लगता है। आज मुंगेर केवल भारतवर्ष में ही नहीं, सारे विश्व में योगभूमि के रूप में जाना जाता है। हम लोग इस पावन योगभूमि में आने वाले चार दिनों में श्रीमद्भागवत में नौ योगेश्वरों के महाराज निमि के साथ हुए संवाद पर चर्चा करेंगे। प्राचीन राजाओं की परम्परा थी, वे महापुरुषों के सान्निध्य में बैठकर जीवन के तथ्यों को, जीवन की शान्ति को समझते थे। अभी जैसे हम सुन रहे थे, पूज्य स्वामी मुक्तानन्द जी महाराज और समादरणीय गजपति महाराज से कि बाहरी विकास तो बहुत होता जा रहा है, लेकिन आंतरिक विकास, जिससे व्यक्तित्व का निर्माण होता है, यह प्राय: कम हो गया है। 'समाप्त हो गया है', ऐसा मैं नहीं कहता हूँ, क्योंकि अगर समाप्त हो गया होता तो आज मुंगेर जैसी भूमि में देश-विदेश के बीस हज़ार श्रद्धालु उपस्थित नहीं होते। यह इस बात का संकेत है कि अभी भी भारतवर्ष के प्रति लोगों का भाव है और आज भी भारतवर्ष जगद्गुरु कहलाने का अधिकारी है।

आज भी आप लोग वही दृश्य इस मंच पर देख रहे थे–एक तरफ परमपूज्य परमश्रद्धेय स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज, एक तरफ स्वामी श्री मुक्तानन्द जी महाराज और मध्य में महामहिम गजपति जी महाराज। नवयोगेश्वरों का संवाद सतयुग में हुआ होगा, लेकिन वही संवाद शायद आज मुंगेर की इस



धराधाम पर, इस मंच पर भी हो रहा था, ऐसा लगता था। यहाँ महाराजा भी बैठे हुए थे और संन्यस्त महापुरुष भी।

कथा की भूमिका

महाराज निमि ने नौ योगेश्वरों से नौ प्रश्न किए और उन प्रश्नों का आधार वही है जो हम लोगों के जीवन का आधार है। कथा की भूमिका कुछ इस प्रकार है। यदुवंश को महात्माओं का श्राप लग जाता है। यदुवंश माने भगवान कृष्ण का वंश। क्यों श्राप हो जाता है यदुवंश को? इसलिए कि जब भगवान कृष्ण ने महाभारत का युद्ध प्रायः पूर्ण कर दिया और पृथ्वी का भार समाप्त हो गया, तब भगवान कृष्ण को लगा कि अभी मेरा यदुवंश, जो करोड़ों की संख्या में है और बड़ा शक्तिशाली है, बाकी है। अगर शक्ति ईश्वर-नियंत्रित होगी तो समाज के सृजन का काम करेगी, समाज के विकास का काम करेगी, लेकिन अगर शक्ति ईश्वर-नियंत्रित नहीं होगी, धर्म-नियंत्रित नहीं होगी तो वही शक्ति समाज के विनाश का भी काम कर सकती है, समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

भगवान कृष्ण ने सोचा कि जब तक मैं हूँ, तब तक यह शक्तिशाली यदुवंश, समाज के सृजन का कार्य, लोगों की सहायता का कार्य कर रहा है। मेरे जाने के बाद हो सकता है कि यह यदुवंश स्वयं पृथ्वी का भार बन जाए। इसलिए भगवान कृष्ण ने यदुवंश के भी संहार का संकल्प किया। भगवान कृष्ण के संकल्प से एक बड़ी विचित्र घटना घटी, जिसे आपमें से कई लोग जानते भी होंगे।

द्वारिका में नारद, विश्वामित्र आदि महात्मा लोग चातुर्मास कर रहे थे। भगवान कृष्ण के अनेक राजकुमार, जिनमें प्रद्युम्न, साम्ब आदि भी शामिल थे, आमोद-प्रमोद के लिए निकले थे। उनमें साम्ब देखने में बहुत सुंदर थे। सभी राजकुमारों ने साम्ब को महिलाओं के वस्त्र पहना दिए और साम्ब के उदर में कुछ कपड़े बाँधकर थोड़ा बड़ा कर दिया। महिलाओं के कपड़े पहनाकर, घूँघट डालकर उन्हें महात्माओं के पास ले जाते हैं और पूछते हैं, 'महात्माओं! आप सिद्ध पुरुष हैं। हमारी इस सहेली का बच्चा होने वाला है। आप बताइये कि बेटा होगा या बेटी।' महात्मा लोग वास्तव में सिद्ध थे। वे समझ गये कि यह तो स्त्री नहीं, पुरुष है। यह इनकी सखी-सहेली नहीं है। ये राजकुमार हमसे मज़ाक कर रहे हैं। महात्माओं को रोष आ जाता है और आवेश में आकर श्राप



देते हैं, 'मूर्खों! महात्माओं से मज़ाक करते हो? महात्माओं से मज़ाक करने का परिणाम तुमको भोगना पड़ेगा। तुम्हारी इस सखी के पेट से न बेटा होगा, न बेटी। एक लोहे का मूसल होगा, जो सारे यदुवंश का विनाश कर देगा और तुम लोग विनष्ट हो जाओगे।'

हमारे गुरुदेव, पूज्य स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज कहते थे, 'जिस समाज में, जिस परिवार में, जिस ग्राम या शहर में, महात्माओं का उपहास होने लग जाए, महात्माओं के साथ मज़ाक होने लग जाए, सोच लेना चाहिए कि उस समाज का, उस ग्राम का, उस नगर का विनाश नज़दीक आ रहा है।' लेकिन मुझे बहुत खुशी है, प्रातःकाल से यहाँ का माहौल देखकर। पहले भी मैं मुंगेर दो बार आ चुका हूँ। हमारे पूज्य गुरुदेव, स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की कृपा से और पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज के विलक्षण व्यक्तित्व से यहाँ की प्रजा ऐसी है कि जहाँ से भी पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज निकल जाते हैं या कोई भी यहाँ का संत निकल जाता है, सारे नगर और गाँव के लोग सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं। यह उनके विलक्षण व्यक्तित्व का प्रताप है और यह यहाँ की प्रजा का सौभाग्य है कि यहाँ पर ऐसे महापुरुषों का निवास है।



यदुवंश को श्राप हो जाता है और श्राप होने के बाद उस कथा का मैं विस्तार नहीं करूँगा। यह घटना भगवान कृष्ण को नहीं बताई जाती और उस मूसल को घिस-घिस कर, चूरा बनाकर समुद्र में डाल दिया जाता है। वही मूसल बाद में एरक का घास बनकर यदुवंश का विनाश करती है। महाराज वसुदेव जी को इस घटना का ज्ञान हुआ कि यदुवंश का विनाश होने वाला है। वसुदेव जी यद्यपि भगवान कृष्ण के पिता हैं, लेकिन भगवान जिनके पुत्र बनकर आ जाएँ, उन्हें पुत्र के प्रति प्रेम न हो या पुत्र के वियोग का भय न हो, यह कहना थोड़ा कठिन है।

वसुदेव जी ने नारद जी से कहा, 'नारद जी, मैंने सुना है कि यदुवंश के विनाश के लिये महात्माओं का श्राप हो चुका है। यदुवंश का विनाश होगा तो हमारा और श्रीकृष्ण का वियोग हो जायेगा। क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे हमेशा-हमेशा के लिये हमें श्रीकृष्ण का अनुभव होता रहे, उनकी अनुभूति होती रहे?' नारद जी ने वसुदेव जी महाराज के प्रश्न का स्वागत किया और कहा, 'वसुदेव जी, मैं आपको इस प्रश्न के उत्तर में एक सुंदर संवाद सुनाता हूँ। यही प्रश्न महाराज निमि ने अपने यज्ञ में नव योगेश्वरों से किया था।'

नव योगेश्वर संवाद

नव योगेश्वर प्राय: विचरण करते रहते थे। वे महाराज निमि के यज्ञ में आमंत्रित नहीं थे, लेकिन वहाँ पहुंच गए। नव योगेश्वरों को देखकर महाराज निमि ने उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम किया, जो गृहस्थ का कर्तव्य है। प्रणाम करने के बाद उन्हें आसन दिया और आसन देने के बाद उनसे वही प्रश्न पूछा कि कैसे भगवान से वियोग न हो। विदेहराज महाराज निमि ने कहा–

धर्मान् भागवतान् ब्रूत यदि न: श्रुतये क्षमम्।
यै: प्रसन्न: प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यज: ॥11.2.31॥

'कृपा करके हमें ऐसे भागवत धर्म का उपदेश दीजिए, जिससे प्रसन्न होकर भगवान श्यामसुंदर, या भगवान राम या भगवान शिव या आपके जो भी इष्ट हों, अपने आपका भी दान कर देते हैं।' *दास्यति आत्मानं अपि अज:*–अपने आप को भी दे देते हैं, अपने आप को दान कर देते हैं।

क्या भगवान कोई दान की वस्तु हैं? यहाँ दान करने का अभिप्राय क्या है? यही कि भगवान हमेशा-हमेशा के लिए हृदय में अनुभव होने लग जाते हैं या भक्त को हमेशा-हमेशा के लिए अपने धाम में बुला देते हैं और उसे हमेशा-हमेशा के लिये पावन सान्निध्य प्राप्त हो जाता है।

इस प्रश्न के जवाब में कवि नाम के योगेश्वर ने भागवत धर्म का वर्णन किया। उन्होंने भागवत धर्म का बड़ा सुंदर और सीधा अर्थ दिया है–

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये।
अञ्ज: पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान्॥11.2.34॥

जिस उपाय से व्यक्ति बड़ी आसानी से, सरलता से भगवान को प्राप्त कर ले वही भागवत धर्म है। केवल विद्वान् व्यक्ति ही नहीं, एक सामान्य नागरिक भी भगवान को पा ले। *अविदुषाम्* शब्द का अर्थ यहाँ पर नासमझ या कम पढ़ा-लिखा व्यक्ति है। एक अनपढ़ व्यक्ति भी सरलता से भगवान को कैसे प्राप्त कर सकता है? वह सरल-से-सरल उपाय, जो भगवान के ही द्वारा बताया गया है, उसी का नाम है भागवत धर्म।

इतना सरल धर्म, ऐसा सरल साधन कौन-सा है? वेदान्त? योग? धर्म? भक्ति? वेदान्त तो थोड़ा कठिन कार्य है, साधन-चतुष्टय-सम्पन्न होना चाहिए। विवेक, वैराग्य, षट् संपत्ति और मुमुक्षत्व होना चाहिए। योग में भी कठिनाई

है, *योग: चित्तवृत्तिनिरोध:*। अष्टांग योग का यम-नियम ही जीवन में आ जाए तो बड़ी सफलता प्राप्त हो जाए। रही बात धर्म की तो आज के समय पूर्ण धर्म का पालन करने वाला विरला ही होगा। चाहे संन्यासी हो या गृहस्थ, पूर्ण धर्म का वैदिक विधि से पालन करने वाला अगर कोई मिलेगा तो अपवाद रूप में ही मिलेगा, और वह अपवाद रूप शायद यहाँ मुंगेर में ही देखने को मिलेगा। पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज जैसे पूर्ण संन्यास धर्म का पालन करने वाले संन्यासी बहुत कम हैं। जहाँ तक गृहस्थों का सवाल है, आज कितने गृहस्थ हैं जो प्रतिदिन गायत्री मंत्र का जप करते हैं? कितने गृहस्थ हैं जो यज्ञोपवीत धारण करते हैं? कितने गृहस्थ हैं जो चोटी रखते हैं? किसी से पूछो, 'आपकी चोटी कहाँ गई?' तो कहते हैं, 'नाई ने काट दी।' अरे! नाई ने आपकी अनुमति के बिना काट दी या आपने उसको सेट कराया? लोग यज्ञोपवीत नहीं पहनते, शिखा नहीं धारण करते, गायत्री मंत्र का जप नहीं करते, अग्निहोत्र नहीं करते, अतिथि-सेवा नहीं करते, गरीबों की सहायता नहीं करते, यही तो गृहस्थों के कार्य हैं। अपने धर्म का पूर्णरूपेण पालन करने वाले आज कितने लोग हैं? गृहस्थ हों या विरक्त, बहुत कम हैं।

भागवत धर्म की परिभाषा

फिर भगवान ने कौन-सा ऐसा काम बताया, कौन-सा रास्ता बताया जिसे हम लोग भागवत धर्म कहते हैं और जो हमारे जीवन में भगवान की प्राप्ति करा सकता है?' यहाँ पर योगेश्वर कवि बड़ा सुंदर श्लोक कहते हैं–

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत्॥11.2.36॥

आप शरीर के द्वारा, वाणी के द्वारा, मन के द्वारा, इन्द्रियों के द्वारा, बुद्धि के द्वारा, अथवा अपने स्वभाव के द्वारा जो भी कर रहे हैं, वह भगवान को समर्पित करते चलें। इतना सरल और कुछ हो ही नहीं सकता।

आप कहेंगे, 'महाराज! भगवान हमारे सामने कहाँ आते हैं, जो उनको अपना कर्म समर्पित कर दें।' भगवान के प्रति समर्पण का अर्थ क्या है? समर्पण का अंतिम अर्थ तो पूर्ण शरणागति है, लेकिन समर्पण का प्रारम्भ कहाँ से होगा? भागवत में उसके दो-तीन स्वरूप बताये गए हैं। अगर पूर्ण समर्पण नहीं है तो कोई भी काम करने से पहले आप एक बात का विचार कर लें, 'यह



काम हमारे गुरुजी को अच्छा लगेगा या नहीं?'

हर व्यक्ति, चाहे वह नासमझ हो या विद्वान्, यह जानता है कि कौन-सा काम गुरुजी को अच्छा लगता है और कौन-सा काम अच्छा नहीं लगता है, कौन-सा काम भगवान को अच्छा लगता है और कौन-सा काम अच्छा नहीं लगता है। किसी को गाली देना, किसी का अपमान करना, किसी की चीज चोरी करना, किसी का हक छीन लेना, किसी को धोखा देना, यह भगवान को अच्छा लगता है क्या? नहीं। आप सब जानते हैं। सबका सम्मान करना, सबकी सहायता करना, संतों की सेवा करना, भगवान का भजन करना, योगाभ्यास करना, यह भगवान को अच्छा लगता है न? आप सब जानते हैं। कोई भी काम करने से पहले एक बात का विचार कर लें कि आपके जो इष्ट हैं, चाहे वे भगवान कृष्ण हों या भगवान राम या भगवान शिव या माँ दुर्गा या गणपति या आपके गुरुदेव, उनकी दृष्टि से काम करने का नाम है समर्पण। इसी का नाम है भागवत धर्म। इसी का नाम है सेवा।

सेवा का वास्तविक स्वरूप

मुंगेर में जो स्वयंसेवक हैं, आश्रम के जो सेवक हैं, वे सब यहाँ पर बहुत सुंदर ढंग से सेवा कार्य कर रहे हैं। लेकिन सेवा के बारे में हमारे शास्त्रों में एक बात बताई हुई है—सेवा कार्य अपनी बुद्धि के अनुसार नहीं होता। ध्यान रखना, सेवा कार्य गुरुजी के आज्ञानुसार होता है। अगर गुरुजी ने भोजनालय में आपकी ड्यूटी लगाई है, तो भोजनालय में ड्यूटी करना ही आपकी गुरु-सेवा है। आपका यहाँ बैठना आवश्यक नहीं है। अगर गुरुजी ने आपकी सेवा पण्डाल की सफाई में लगाई है, तो पण्डाल की सफाई करना ही आपकी गुरु-सेवा है। सेवा का अर्थ होता है आज्ञा का पालन, गुरु की आज्ञा का पालन।

हम लोग प्राय: क्या करते हैं? गुरुजी ने आज्ञा कुछ दी है और हम अपनी बुद्धि लगा देते हैं कि गुरुजी के लिए यह अच्छा होगा। वह सेवा नहीं है। सेवा

में बहुत सावधान रहना चाहिए। उदाहरण के लिये, कोई संत-महात्मा किसी भक्त के घर भोजन के लिये जाते हैं। अगर महात्मा वृद्ध हैं या किसी कारण से उन्हें ब्लडप्रेशर या शूगर है, और वे मिठाई या तली हुई चीज़ें खाने से मना करते हैं, लेकिन शिष्य कहे, 'नहीं महाराज, हमने तो अपने हाथ से बनाया है, अब आपको थोड़ा-सा तो लेना ही होगा।' वह एक टुकड़ा जो आप प्रयास करके गुरुजी को खिलाओगे, वह गुरुजी की सेवा होगी या गुरुजी के शरीर का नुकसान होगा? वह सेवा नहीं है। गुरुजी की आज्ञापालन का एक सूत्र नोट कर लीजिए– *'अग्या सम न सुसाहिब सेवा।'* आज्ञा पालन से बढ़कर कोई सेवा नहीं है, यह रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने लिखा है।

अगर हमारे इष्ट कृष्ण भगवान हैं, तो कोई भी काम करने से पहले हम लोगों को देख लेना चाहिए कि यह काम भगवान कृष्ण को अच्छा लगेगा या नहीं। यदि हमारे इष्ट गुरुदेव हैं जो साक्षात् हमारे सामने हैं, तो कोई भी काम करने से पहले यह विचार कर लेना चाहिए कि यह काम गुरुजी को अच्छा लगेगा या नहीं। समर्पण और सेवा का यही वास्तविक स्वरूप है।

आप कहेंगे, 'महाराज, बहुत प्रयास करते हैं, फिर भी यह नहीं हो पाता है।' तो भगवान कृष्ण ने समर्पण का, भागवत धर्म का और भी सरल उपाय बता दिया। क्या? *कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्, करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत्।* जो भी कर रहे हैं, *करोति यत् यत्* में श्रीधर स्वामी जी कहते हैं– *अशास्त्रविहितं अपि*– जो भी आप कर रहे हैं, अच्छा हो या बुरा, आप उस कार्य को गुरु की सेवा में लगा दें, भगवान की सेवा में लगा दें।

मान लीजिए आपको लगता है कि आपको कुछ नहीं आता है। आप पैसे से या बुद्धि से कोई सेवा नहीं कर सकते हैं। लेकिन आपको आश्रम में झाड़ू लगाना तो आता है न! आश्रम की सफाई करना तो आता है न! इतना तो एक नासमझ व्यक्ति भी जानता है। लेकिन उसमें भी एक शर्त है। आश्रम में यदि आप झाड़ू लगाते हैं, सफाई करते हैं, उसके बदले अगर आप कोई पैसा नहीं लेते और उसके बदले आप अपना नाम भी छपवाना नहीं चाहते, आप यह भी नहीं चाहते कि गुरुजी हमारा नाम पुकारें कि इन्होंने इतनी सेवा की, तो वह सच्ची सेवा है।

आजकल लोग बड़े-बड़े सेवा कार्य करते हैं, लेकिन एक अभिलाषा बनी रहती है कि माईक से हमारा नाम बोला जाए। यह आपकी सेवा को बिगाड़

देगी। प्राय: आश्रमों में लोग दान देते हैं, कमरे बना देते हैं, लेकिन जानते हैं, पत्थर पर अपना नाम लिखवा देते हैं। ठीक है, आपको वह फल मिल जायेगा, यश मिल जायेगा, लेकिन उससे आपको भगवान की अनुभूति नहीं होगी, भगवान की प्राप्ति नहीं होगी। आपकी सेवा क्या है, यह प्रश्न नहीं है, बल्कि आपकी सेवा कैसी है, यह प्रश्न है। अगर आप आश्रम में झाड़ू लगाते हैं और उसके बदले न पैसा चाहते हैं, न नाम, तो झाड़ू लगाना भी भागवत धर्म बन जाएगा और एक दिन झाड़ू लगाते-लगाते आपके हृदय में भगवान का प्राकट्य हो जायेगा, भगवान की अनुभूति हो जायेगी। इससे सरल और क्या हो सकता है? आपके जीवन में जो योग्यता है, उसी योग्यता का उपयोग महापुरुष कर सकते हैं।

श्रद्धा की पराकाष्ठा

हमारे गुरुजी एक कथा सुनाते थे। एक गाँव में एक अनपढ़ व्यक्ति गाय चराया करता था। उसे किसी ने बता दिया कि जब तक गुरु धारण नहीं किया जाता, गुरु से दीक्षा नहीं ली जाती, तब तक मोक्ष नहीं मिलता। अब उसे धुन सवार हो गई, गुरु मंत्र लेने की। वह मंत्र नहीं बोल पाता था, मन्तर बोलता था। हर किसी से कहता, 'हमको मन्तर लेना है।' हमारे पूज्य स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज मन्तर का भी अर्थ बताते थे, 'जिसके जपने से मन तर हो जाए, आनन्दित हो जाए, उसका नाम मन्तर है!'

एक दिन एक महात्मा जंगल से विचरण करते हुए निकल पड़े। ऐसे समझ लीजिये कि पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज निकले होंगे। उस ग्वाले ने महात्मा के पैर पकड़ लिए, 'महाराज, मन्तर लेना है मन्तर।' वे समझ गए कि यह व्यक्ति मंत्र शब्द भी नहीं बोल पाता है। इसे बीज मंत्र वगैरह लगाकर कोई बड़ा मंत्र देंगे तो यह जपेगा कैसे? उन्होंने भगवान का एक नाम बता दिया, 'अघमोचन।' बोले, 'यही तेरा मंत्र है, इसी का जप कर।' अघ माने पाप, मोचन माने मुक्त करने वाले। तो अघमोचन का अर्थ हुआ भगवान नारायण।

यह मंत्र पाकर वह ग्वाला बड़ा प्रसन्न हो गया। गाय चरा रहा है, बड़ा खुश है, आज गुरुमन्तर मिल गया। जप रहा है, 'अघमोचन, अघमोचन, अघमोचन, अघमोचन।' घर पहुँचा, अपनी पत्नी को बताया, 'आज मन्तर मिल गया।' पत्नी बड़ी प्रसन्न हुई। अब उस ग्वाले को स्नान करना था, भोजन करना था। पढ़ा-लिखा तो था नहीं, मंत्र को कहीं लिख नहीं सकता था। पत्नी

से बोला, 'थोड़ी देर तू जप ले, मैं स्नान-भोजन कर लूँ, फिर तू मुझे बता देना।' अब पत्नी जपने लग गई, 'अघमोचन, अघमोचन, अघमोचन।' ग्वाले ने स्नान किया, भोजन किया। भोजन परोसते समय पत्नी जपना भूल गई। भोजने करने के बाद ग्वाले ने पत्नी से कहा, 'बता मन्तर मेरा क्या था, वापस दे।' अब वह पत्नी घबराई, वह भी पढ़ी-लिखी नहीं थी। अघमोचन उसे याद ही नहीं रहा। अघमोचन का अर्थ भी नहीं आता था। उसने सोचा, 'वह मन्तर शायद घमोचन था।' उसने बोल दिया, 'घमोचन, घमोचन।'

ग्वाले को भी लगा, मन्तर घमोचन तो नहीं था। लेकिन अब क्या करें? उसने निर्णय कर लिया कि मैं आज के बाद किसी को अपना मन्तर नहीं दूँगा, स्वयं ही जपूँगा। अब वह रोज़ जपता था घमोचन, घमोचन, घमोचन। भाव क्या था? भगवान नारायण का मंत्र है, गुरुजी ने दिया है। गाय चराता था, निरंतर जपता था, घमोचन, घमोचन, घमोचन। एक महीना बीत गया। वह इतने भाव और प्रेम से जपता था कि भगवान नारायण का हृदय द्रवित हो गया।

भगवान नारायण लक्ष्मी जी से बोले, 'आज मैं एक ऐसे भक्त को दर्शन देने जा रहा हूँ, जो बड़ा प्रेमी है। कभी मंत्र छोड़ता ही नहीं है, जागने से सोने तक जपता रहता है। मैं उसे दर्शन देने जा रहा हूँ।' लक्ष्मी जी बोलीं, 'अगर आप इस भक्त की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं, इसे याद कर आप इतना प्रसन्न



हो रहे हैं, तो मैं भी ऐसे भक्त का दर्शन क्यों न करूँ?' भगवान विष्णु ने मना किया, कहा, 'नहीं, तुम मत चलो। वह थोड़ा अलग किस्म का भक्त है।' लक्ष्मी जी नहीं मानीं, बोलीं, 'हम तो चलेंगे।'

यह परम्परा बहुत पुरानी है, माताएँ जल्दी मानती नहीं हैं। लक्ष्मी जी जिद करके साथ में आ गईं। आने के बाद लक्ष्मी जी ने पूछा, 'कहाँ है आपका भक्त?' वे बोले, 'वहाँ सामने गाय चरा रहा है।' लक्ष्मी जी ने सोचा, 'इतनी प्रशंसा की है तो पहले मैं देखूँ यह जपता क्या है। भगवान एक महीने में इतने प्रसन्न कैसे हो गए। अरे! ध्रुव को भी छः महीने लग गये थे भगवान को प्रसन्न करने के लिए। आखिर यह है कौन? कौन-सा मंत्र जपता है?' लक्ष्मी जी पास में गईं, ध्यान से सुना। वह जप रहा था, घमोचन, घमोचन, घमोचन।

लक्ष्मी जी ने सोचा, यह नाम न तो विष्णु सहस्रनाम में है, न ही गोपाल सहस्रनाम में। यह नाम आया कहाँ से? लक्ष्मी जी ने उस ग्वाले से पूछा, 'भैया, किसका नाम जप रहे हो?' ग्वाले ने निर्णय कर लिया था कि आज के बाद किसी को अपना मंत्र नहीं बताऊँगा, क्योंकि पत्नी ने भुला दिया था। लक्ष्मी जी ने फिर पूछा, उसने नहीं बताया, पर जपता रहा घमोचन, घमोचन, घमोचन।

लक्ष्मी जी ने फिर कहा, 'अरे! किसका नाम जप रहा है, बताता क्यों नहीं है?' ग्वाले को गुस्सा तो आया, लेकिन फिर धैर्य धारण किया कि बताऊँगा तो मैं भूल जाऊँगा। सो फिर नहीं बताया। लक्ष्मी जी ने डाँटकर कहा, 'बता किसका नाम जप रहा है।' अब उससे नहीं रहा गया, उसने गुस्से से कहा, 'जा, तेरे खसम का नाम जप रहा हूँ।' आप जानते हैं न खसम किसको बोलते हैं, पति को। अब लक्ष्मी जी सकपकाईं। सोचा, 'पक्का भगत लगता है, हम दोनों को पहचान गया।'

तब लक्ष्मी जी ने ग्वाले से पूछा, 'मेरा खसम कहाँ है?' ग्वाला बोला, 'छिपा होगा कहीं गड्ढे में।' भगवान विष्णु वास्तव में गड्ढे में छिपे हुए थे। ग्वाले को नहीं मालूम था कि जिनका मैं नाम जप रहा हूँ, वे भगवान छिपे हुए हैं। वह तो गुस्से में बोल गया, 'गड्ढे में पड़े हैं, जा।' लक्ष्मी जी भगवान विष्णु के पास भागी-भागी आईं, बोलीं, 'वास्तव में यह आपका पक्का भगत है, ऐसा अलौकिक भगत मैंने देखा ही नहीं।' भगवान विष्णु आते हैं, उस भक्त को दर्शन देते हैं। भक्त चरणों में गिर जाता है, भगवान की अनुभूति हो जाती है। यह विश्वास की, गुरु-निष्ठा की, भागवत धर्म की पराकाष्ठा है।

समर्पण और भागवत धर्म

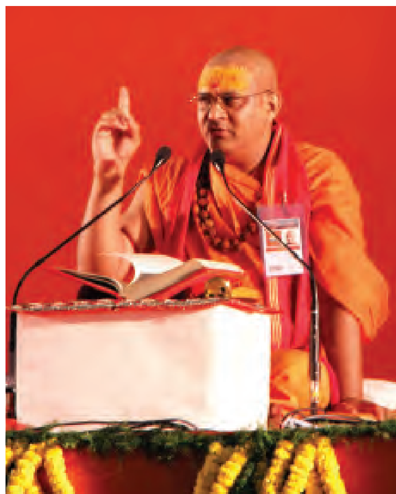
भागवत धर्म का सार यही है कि आप जो कर रहे हो, *करोति यत् यत्,* भगवान के भाव से करने लग जाओ, जैसे वह ग्वाला कर रहा था। हमारे गुरुदेव, पूज्य स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज एक बात और कहते थे, 'अगर ऐसा समर्पण नहीं हो रहा है तो वाणी के समर्पण से प्रारम्भ करो। मन से समर्पण नहीं हो रहा, कोई बात नहीं। शरीर से नहीं हो रहा, कोई बात नहीं। वाणी के समर्पण से प्रारम्भ करो।' वाणी का समर्पण क्या है? कोई भी काम करो और अंत में कह दो, *श्रीकृष्णार्पणमस्तु,* यह काम भगवान कृष्ण को समर्पित है। इससे क्या लाभ होगा?

मान लीजिए किसी व्यक्ति की गाली देने की आदत है। कई लोग होते हैं जो बिना किसी कारण के गाली देकर ही बात करते हैं। अगर उन्हें गुरुजी ने एक नियम दे दिया कि कोई भी काम करो, लेकिन काम करने के बाद एक वाक्य बोलना होगा, 'श्रीकृष्णार्पणमस्तु', तो जब वह किसी को गाली देगा, उसके बाद उसे क्या कहना पड़ेगा? श्रीकृष्णार्पणमस्तु। फिर वह गाली कहाँ जाएगी? उस व्यक्ति के यहाँ जाएगी या भगवान के यहाँ? भगवान के यहाँ, क्योंकि श्रीकृष्णार्पणमस्तु कहा है। अगर उसके हृदय में भगवान कृष्ण के प्रति थोड़ा-सा भी प्रेम है, थोड़ा-सा भी लगाव है, थोड़ा-सा भी अनुराग है, अगर वह कन्हैया को अपना मानता है या अपने को कन्हैया का मानता है, तो अगले दिन से उसका गाली देना बंद हो जाएगा। अब आप विचार करो कि ऋषियों का यह मनोवैज्ञानिक तरीका कितना सुंदर, कितना सरल है। इससे सरल और क्या हो सकता है। यह है भागवत धर्म का स्वरूप। जो अत्यन्त नासमझ व्यक्ति को भी छोटे-से-छोटे कार्य के माध्यम से भगवान से मिला दे, उसका नाम है भागवत धर्म।

इससे क्या होगा? अगर हमने ऐसा नियम ले लिया, पहले तो गलत काम छूट जायेंगे। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो जानबूझकर गलत काम करते हैं और कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अनजान में। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से प्रश्न किया था–

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥3.36॥

हमारे-आपके जीवन में कई ऐसे अवसर आते हैं जब हम चाहते हैं कि गलत काम न करें, फिर भी संग के कारण या आदत के कारण या



स्वभाव के कारण, वह गलत काम हो जाता है। पीछे पश्चात्ताप होता है। लेकिन जब प्रत्येक कार्य के बाद श्रीकृष्णार्पणमस्तु कहने का नियम ले लेंगे तो क्या होगा? धीरे-धीरे ये गलत काम छूटते जाएँगे, अगर भगवान के प्रति आपका अनुराग और प्रेम है, अगर भगवान को आप अपना मानते हो। सच बात तो यही है सज्जनों! अपने तो भगवान ही हैं। भगवान आनन्द स्वरूप हैं और उनके आनन्द की अभिव्यक्ति देखनी हो तो भगवान के प्रतिनिधियों, संत-महात्माओं में देखनी चाहिए।

ईश्वर के चल-विग्रह

हमने देखा है पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के जीवन में, पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज के जीवन में और आप लोग तो देखते ही रहते हैं। चाहे बड़ा हो, बूढ़ा हो या बच्चा हो, स्वामीजी जहाँ से निकलते हैं, सभी उछल पड़ते हैं 'हरिः ॐ स्वामीजी, हरिः ॐ स्वामीजी।' कैसी-कैसी घटनाओं को वे आनन्द में बदल देते हैं। कितना विनोद करते हैं, आश्चर्य होता है उनके जीवन को देखकर। वास्तव में आनन्द बाँटता वही है, जिसके हृदय में आनन्द स्वरूप परमात्मा प्रकट हो जाता है। आखिर जिसके पास जो होगा, वह वही बाँटेगा न! जिसके पास दुःख होगा, वह दुःख बाँटेगा। जिसके पास गाली होगी, वह गाली बाँटेगा। एक बार किसी महात्मा को कोई गाली दे रहा था। महात्मा मुस्कुराने लग गए, बोले, '*ददतु ददतु गालीर्गालीमन्तो भवन्तः।*' तुम्हारे पास गाली है तो गाली ही तो दोगे, और क्या दोगे?

मंदिर में जो विग्रह है, वह भगवान का अचल विग्रह है, जो चलता-फिरता नहीं है। आप लोग वहाँ दर्शन करते हैं, पूजन करते हैं, पर क्या आप जानते हैं कि ये जो संत हैं, महापुरुष हैं, ये भगवान के चल विग्रह हैं, भगवान के चलते-फिरते मंदिर हैं। आपके मुंगेर क्षेत्र में इतने चल मंदिर इतने महापुरुषों के रूप में आए हैं, यह आप लोगों का सौभाग्य है। अगर आपको भगवान

के चलते-फिरते विग्रह देखने हैं तो इन्हें देखिये। महापुरुषों का जीवन इतना आनन्दमय होता है, इतना अच्छा होता है, कि विपरीत घटनाओं को भी आनन्द में बदल देते हैं।

हमारे पूज्य गुरुदेव, स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज के जीवन की एक घटना सुनाता हूँ। एक पत्रिका है जिसमें प्राय: संत-महात्माओं के प्रति थोड़ा कटाक्ष करते रहते हैं, कुछ विरोध में लिखते रहते हैं। हमारे गुरुजी के बारे में भी उन्होंने कुछ गलत छाप दिया। गुरुजी के पास ब्रजधाम के बहुत सारे संत-विद्वान् आए, कहा, 'गुरुजी, इस पत्रिका के मालिक और सम्पादक के विरुद्ध हम लोग केस करेंगे, आंदोलन करेंगे। आप जैसे महात्मा के प्रति इन्होंने ऐसा लिखा कैसे?' जानते हो स्वामी अखण्डानंद जी ने क्या कहा? वे बोले, 'शान्ति से बैठो। पहले एक बात बताओ, जिन्होंने हमारे खिलाफ उस पत्रिका में छापा है, हमारा नाम और पता ठीक छपा है कि नहीं?' लोग बोले, 'ठीक छपा है।' वे बोले, 'फिर चिंता मत करो, केस मत करो, आंदोलन मत करो।' लोगों ने पूछा, 'क्यों?' वे बोले, 'जो लोग हमें नहीं भी जानते हैं, वे लोग भी पत्रिका पढ़कर हमें देखने आयेंगे कि वह बाबाजी कौन है जिसके विषय में यह सब छपा है। वह बाबाजी क्या करता है, चलो देखें चलकर। एक बार वे मेरे पास आ जायेंगे, तो मेरे भक्त बनकर जायेंगे, मेरे विरोधी बनकर नहीं। यह पत्रिका तो हमारा बिना पैसे के प्रचार कर रही है। उसके खिलाफ केस करने की ज़रूरत क्या है?'

यह महात्माओं का दृष्टिकोण है, यह महात्माओं का स्वभाव है, यह महात्माओं की सोच है। ऐसे महापुरुषों के साथ आप नियम लेकर, गुरु-मंत्र लेकर रहिए। जैसे पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज हैं। इतना बड़ा कार्यक्रम हो रहा है, लेकिन उनके चेहरे पर न तो कोई गम्भीरता, न कोई तनाव, न कोई परेशानी ही दिखाई देती है। हँसी-खेल में जैसे सारा काम चल रहा है। वे कहते हैं, 'गुरुदेव ने हमें केवल निमित्त बनाया है, करने-कराने वाले तो स्वयं गुरुदेव हैं।' इसलिए उनके बल पर वे हमेशा निश्चिन्त रहते हैं, आनन्द में रहते हैं। ऐसे महापुरुषों के सान्निध्य में आप गुरु-दीक्षा लेकर रहेंगे, भागवत धर्म का आचरण करेंगे, तो आपके जीवन में भगवान का प्राकट्य होगा और भगवान की अनुभूति के बाद भगवान के वियोग का कभी अनुभव नहीं होगा। विदेहराज निमि का जो पहला प्रश्न था कि भगवान से कभी वियोग न हो, यह कैसे संभव हो, इस प्रश्न का समाधान आज किया गया और कल से आगे के प्रश्न उठाए जायेंगे।

भगवद्-भक्तों के लक्षण

24 अक्टूबर 2013

कल श्रीमद्भागवत के नव योगेश्वर संवाद की चर्चा शुरू हुई थी। विदेहराज निमि ने नौ महात्माओं से अलग-अलग प्रश्न पूछे और उनके एक-एक प्रश्न का जवाब एक-एक योगेश्वर ने दिया। यहाँ पर अलग-अलग योग हैं, भक्ति योग है, ज्ञान योग है, कर्म योग है, सांख्य योग है, पातंजल योग है, इन अलग-अलग विभागों के अलग-अलग योगेश्वर हैं और उन्होंने अलग-अलग प्रश्नों का जवाब दिया।

सद्गुरु के लक्षण

कल हम लोगों ने संतों-महापुरुषों के बारे में चर्चा की थी कि अगर सद्गुरु मिल जाएँ, उनके चरणों में ईमानदारी के साथ जीवन समर्पित कर दें, तो हमारे जीवन का कल्याण हो जाता है। ईश्वर-कृपा से हमको-आपको ऐसे सद्गुरु मिले हुए हैं–पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज, पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज, हमारे पूज्य स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज। ऐसे महापुरुष इस धरा-धाम में हुए हैं और आज भी हैं। इसी के आधार पर विदेहराज निमि नव योगेश्वरों से अगला प्रश्न करते हैं–

अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम्।
यथा चरति यद् ब्रूते यैर्लिंगैर्भगवत्प्रियः॥11.2.44॥

'महाराज, भगवान के भक्त का लक्षण बताइए। उनका जीवन कैसा होता है? उनका आचरण कैसा होता है? उनकी वाणी कैसी होती है? किन लक्षणों



से पहचान की जाए कि वे भगवान के प्रिय भक्त हैं?' सीधी-सीधी भाषा में हम कह सकते हैं कि कैसे पता लगे कि ये सद्‌गुरु हैं। हम इनको अपना गुरु स्वीकार करें या न करें, यह कैसे पता लगे, क्योंकि आजकल यह भी बड़ी समस्या हो गई है। आजकल गुरु शब्द के साथ सत् उपसर्ग लगाना पड़ता है, क्योंकि गुरु के आजकल बहुत अर्थ हो गये हैं। जो बहुत चालाक होता है, बदमाश होता है, उसके बारे में कहा जाता है, ये बड़े गुरु हैं। इसलिए गुरु के साथ सद्‌गुरु लगाया जाता है।

सद्‌गुरु की पहचान क्या है? सद्‌गुरु का लक्षण क्या है? हम कैसे निर्णय करें कि इनसे हम गुरुदीक्षा लें? क्या इनसे हमें भगवान की प्राप्ति का, कल्याण का मार्गदर्शन प्राप्त होगा? यही प्रश्न विदेहराज निमि का है। हमारे गुरुदेव, पूज्य स्वामी अखण्डानन्द जी से किसी ने पूछा कि महाराज, आजकल इस वेश में बहुत सारे महात्मा हैं, तब निर्णय कैसे हो कि कौन वास्तव में सद्‌गुरु है और कौन नहीं। स्वामी अखण्डानन्द जी ने बहुत सुंदर जवाब दिया। उन्होंने कहा कि अगर आपने अपने जीवन में सत्संग किया है, साधना की है, तो कुछ समय संत के पास रहने से आपको स्वयं पता लग जाएगा कि ये वास्तव में सद्‌गुरु हैं या खाली दिखावा है। दूसरी बात, जिस महापुरुष या महात्मा

के पास बैठने से आपके जीवन में स्वाभाविक शान्ति और आनन्द आने लग जाए, मन एकाग्र होने लग जाए तो सोच लेना कि यह महात्मा सद्‌गुरु है। आप किसी भी महापुरुष के सान्निध्य में दो-चार दिन रहें, आपको उनके पास रहकर कैसा लगता है? सतोगुण बढ़ता है या रजोगुण या तमोगुण? अगर उनके पास रहने से आपकी सात्त्विक मनोवृत्ति स्वाभाविक रूप से बढ़ने लग जाए, मन एकाग्र होने लग जाए, भगवान का स्मरण होने लग जाए, सोच लेना कि ये महापुरुष हैं, ये भगवान से जुड़े हुए हैं, ये सद्‌गुरु हैं।

लक्ष्य के प्रति ईमानदारी

स्वामी अखण्डानन्द जी ने आगे कहा, 'यदि हमारा जीवन ईमानदार है, तो अगर हम कहीं गलत जगह जुड़ भी जायेंगे, तो गुरु-शिष्य परम्परा की ईश्वरीय व्यवस्था वहाँ जुड़ने नहीं देगी, वहाँ से काटकर हमें सच्चे सद्‌गुरु से जोड़ देगी। भगवान की ऐसी व्यवस्था होती है। लेकिन इसमें प्रश्न यही है कि हम वास्तव में ईमानदार हैं कि नहीं।'

हम गुरु के पास किसलिए जाते हैं? अपनी फैक्ट्री चल जाए, कुछ इसलिए जाते हैं। या पुत्र मिल जाए, कुछ इसलिए जाते हैं। प्रश्न यहाँ खड़ा होता है कि हम गुरु के पास आखिर क्यों जाते हैं? ईश्वर प्राप्ति के लिए या धन प्राप्ति के लिए या प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए? अगर हम ईमानदार हैं, और वास्तव में हम ईश्वर प्राप्ति के लिए गुरु के पास जाते हैं, तो यह ईश्वरीय व्यवस्था ऐसी होती है कि अगर हम कहीं गलत जगह जुड़ भी जायेंगे तो भगवान हमें वहाँ से काट देंगे और ठीक जगह जोड़ देंगे।

मैं समझता हूँ कि आपमें से अनेक लोगों का ऐसा अनुभव रहा होगा। इसलिये हमें निश्चिन्त रहना चाहिए। हमें ध्यान रखना है कि हम ईमानदार रहें। अगर हम स्वयं ईश्वर प्राप्ति के प्रति ईमानदार नहीं हैं, तो फिर जैसी चालाकी हम करते हैं, वैसा कोई चालाक गुरु हमें मिल जायेगा। भारतवर्ष में हर तरह की परम्परा चल रही है। लेकिन अगर हम ईमानदार हैं तो हमें अवश्य सद्‌गुरु की प्राप्ति होगी।

सद्‌गुरु केवल प्रवचन नहीं देते, उनका जीवन, उनका आचरण, उनकी रहनी भी वैसी होती है। यह हम लोगों ने देखा है अपने पूज्य गुरु, स्वामी अखण्डानन्द जी के जीवन में। एक बार वृंदावन आश्रम में भगवान कृष्ण का मंदिर बन रहा था। उनका नाम है नृत्य गोपाल भगवान, जो नाचते रहते

हैं। उस मंदिर में बहुत बड़ा हॉल बना। शायद कारीगरों की कुछ कमी थी कि अन्तिम चरण में पूरा-का-पूरा गिर पड़ा। अब वहाँ जो व्यवस्थापक थे, स्वामी ओंकारानन्द जी, उन्होंने भोजन-जल छोड़ दिया कि गुरुजी का इतना नुकसान हो गया।

जब गुरुजी को पता लगा तो उन्होंने फोन किया और ओंकारानन्द जी से बोले, 'ओंकारानन्द, चिन्ता क्यों करते हो? अरे! कृष्ण भगवान को नाचने की आदत है और यह हॉल उन्हें पसंद नहीं आया होगा। नाचते-नाचते एक लात मार दी, हॉल गिरा दिया। वह इसलिए गिराया कि इससे ज़्यादा अच्छा बनेगा, इसलिए निश्चिन्त हो जाओ।' ऐसे होते हैं सद्गुरु और महापुरुष। शिष्य चिंतित था, लेकिन गुरु ने उसे निश्चिन्त कर दिया। जहाँ पैसे की कोई कीमत नहीं है, जहाँ केवल हृदय की कीमत है, समर्पण की कीमत है, उसका नाम है सद्गुरु।

ज्ञानी भक्त

हरि नाम के योगेश्वर ने राजा निमि के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा, 'राजन्! भगवान के जो भक्त हैं, संत हैं, वे तीन प्रकार के होते हैं। जो प्रथम प्रकार के हैं, उनका नाम है ज्ञानी भक्त। उन्हीं को हम सद्गुरु कहते हैं और उनका लक्षण इस प्रकार है–

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवोत्तमः॥11.2.45॥

हरि नामक योगेश्वर ने यहाँ पर बड़ा सुंदर श्लोक कहा है, जिससे वेदान्ती भी ठीक से समझ लें और भक्त भी। उन्होंने कहा, 'अपनी आत्मा के रूप में विराजमान भगवान को जो सभी भूत-प्राणियों में देखता है, और सभी भूत-प्राणियों को उस परमात्मा में अध्यस्थ के रूप में देखता है, वह वास्तव में ज्ञानी भक्त है, सद्गुरु है, महापुरुष है और वही गुरु बनाने लायक होता है।'

अभिप्राय यह हुआ कि सद्गुरु वही है जिसे सभी जड़-चेतन पदार्थों में परमात्मा का दर्शन होने लग जाए, अनुभव होने लग जाए। गुरु का लक्षण श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहा गया है और उसका अर्थ भी यही होता है। श्रोत्रिय माने शास्त्र का जानकार और ब्रह्मनिष्ठ माने परमात्मा का अनुभवी। जो शास्त्र का जानकार है, जिससे जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान हो सके, और

जिसे शास्त्र में लिखी बातों का अनुभव भी हुआ है, वही श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ है। जिसने रसगुल्ले पर शोध-प्रबन्ध तो लिख दिया, पी.एच.डी. कर ली, लेकिन रसगुल्ला कैसा होता है, मालूम नहीं, वह खाली श्रोत्रिय है, ब्रह्मनिष्ठ नहीं। उसने अनुभव नहीं किया है। लेकिन जिसके हृदय में सभी भूत-प्राणियों के लिए भगवद्भाव आ जाए, अपनी आत्मा का अनुभव होने लग जाए, वह वास्तव में सद्गुरु है।

हमारे आदिगुरु शंकराचार्य जी महाराज की घोषणा है, *'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'*। यह सारा संसार ज्यों-का-त्यों परमात्मा का विवर्त है, माया का परिणाम है। या भक्तों की भाषा में कह लें तो 'सियाराममय सब जग जानी, करऊँ प्रणाम जोरि जुग पानी।' यहाँ तुलसीदास जी का दृष्टिकोण क्या है? इस दुनिया में जितने पुरुष हैं, सब मेरे राम जी के स्वरूप हैं और संसार में जितनी महिलाएँ हैं, सब मेरी माँ जानकी जी की स्वरूप हैं। ऐसे श्री सीताराम जी स्वरूपी संसार को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

यह है पूर्ण दृष्टि, यह है भगवत्-दृष्टि और यह जब जीवन में आ जाती है, *तत्र को मोह: क: शोक: एकत्वमनुपश्यत्।* जहाँ एकत्व की अनुभूति हो गई, परमात्म-दर्शन हो गया, आत्म-दर्शन हो गया, उसकी पहचान क्या है? उसके जीवन में कोई शोक, मोह या भय नहीं होगा। शोक होता है बीती हुई घटनाओं के प्रति, मोह होता है वर्तमान की घटनाओं के प्रति और भय होता है भविष्य को लेकर। ऐसा क्यों हो गया, इसका नाम शोक है। ऐसा ही बना रहे, इसका नाम मोह है। कहीं कुछ गड़बड़ न हो जाए, यह भय है। भविष्य का भय, वर्तमान का मोह और भूत का शोक, ये तीनों जिसके जीवन में समाप्त हो जाते हैं, उसका नाम होता है सद्गुरु या महापुरुष और उसी को हम लोग गुरु बना सकते हैं। यह उसी के जीवन में होगा जिसे सभी प्राणियों में भगवान का, अपनी आत्मा का दर्शन होता है।

गुरु बड़े कृपालु होते हैं। उनके यहाँ केवल ईमानदारी और सरलता की जरूरत है। बाकी सब लेकर जाओगे तो चलेगा, लेकिन कपट लेकर जाओगे तो गुरु के यहाँ चलने वाला नहीं है। गुरु की शर्त है, निष्कपट होकर, निश्छल होकर आओ। उनके सामने अपना हृदय खोलकर रख दो। वे या तो तुम्हारी इच्छाओं की निवृत्ति कर देंगे, या फिर तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति करके हमेशा-हमेशा के लिए सुखी कर देंगे। यह गुरु का पूर्ण अधिकार और पूर्ण सामर्थ्य होता है। इसलिये गुरु के सामने आवश्यकता है पूर्ण निश्छल होने की।

भगवत्-दृष्टि

एक-दो उदाहरणों से आप समझ लेंगे कि उस महापुरुष का जीवन कैसा होता है जो सब में परमात्मा का दर्शन करता है। आप लोगों ने संत नामदेव का नाम सुना होगा जो महाराष्ट्र में हुए। एक बार उनकी कुटिया में आग लग गई। संत नामदेव ने देखा कि आज मेरे यहाँ भगवान अग्नि का रूप लेकर आए हैं, इनकी पूजा करनी होगी। जानते हो नामदेव जी ने क्या किया? वे आग में घी डालने लग गए, बूरा डालने लग गए। लोग हँसने लगे कि अच्छा पागल महात्मा है, इसकी कुटिया जल रही है और यह उसमें घी डाल रहा है, बूरा डाल रहा है। लेकिन शायद ही कोई उनके भाव का अंदाज लगा सका।

आप लोगों में भी शायद कुछ ऐसे लोग हों, जो महात्माओं को प्रमाणपत्र देने लग जाते हैं, 'यह महात्मा ठीक है, वह महात्मा ठीक नहीं है।' एक बार मैं दिल्ली से कलकत्ता हवाई जहाज से जा रहा था। एयरपोर्ट गेट पर एक पुलिसवाला खड़ा था। जो लोग मुझे एयरपोर्ट तक छोड़ने आये थे, उनसे वह मेरे जाने के बाद पूछता है, 'इस बेचारे को किस साधु ने भड़का दिया, जो इतनी छोटी अवस्था में यह बाबा बन गया?' उसके हृदय में मेरे प्रति कितनी करुणा थी! माने बाबाओं के प्रति लोगों का दृष्टिकोण ऐसा भी होता है। वे सोचते हैं कि बाबा केवल वही बनता है जिसका दिमाग थोड़ा खिसक गया है।

नामदेव जी के बारे में भी लोगों ने कुछ ऐसा ही सोचा। इन बाबा लोगों को कुछ समझ में तो आता नहीं, इन्हीं की कुटिया में आग लगी और ये ही घी



और बूरा डाल रहे हैं। खैर कुटिया जल गई। भगवान को अपने भक्त की चिंता हुई। *तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्*– भगवद्गीता में यह भगवान की अपने भक्त के लिए प्रतिज्ञा है। भगवान को चिंता हुई, मेरे भक्त की कुटिया जल गई है, लोग हँस रहे हैं। भक्ति और भक्त, दोनों का उपहास हो रहा है।

भगवान ने विश्वकर्मा से कहा कि जाओ, नामदेव की कुटिया को बहुत सुंदर बनाकर आओ। यह वही विश्वकर्मा था जिसने एक रात्रि में पूरी द्वारिका का निर्माण कर दिया था। यह वही विश्वकर्मा था जिसने एक रात्रि में सुदामापुरी को द्वारिकापुरी बना दिया था। विश्वकर्मा के लिए एक कुटिया बनाना कोई बड़ी बात नहीं थी। रात्रि में ही वह बड़ी सुंदर कुटिया बना देता है। जब नामदेव जी प्रात:काल जगे तो प्रभु को धन्यवाद देने लगे, 'धन्य हो प्रभु! मैंने आपकी पूजा अग्नि के रूप में की और आपने वापस उपहार दे दिया सुंदर कुटिया के रूप में।'

थोड़ी देर में गाँववाले भी आ गए। जब उन्होंने वह बढ़िया कुटिया देखी तो बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछा नामदेव जी से, 'अरे बाबाजी! यह कुटिया किसने बनाई? इतनी सुंदर कुटिया बनाने वाला कारीगर हमें भी मिल जाए तो हम भी बनवा लें?' नामदेव जी मुस्कुराए, उनका भाव समझ गए। बोले, 'कुटिया बनाने वाला तब आता है जब अपनी कुटिया में आग लगने पर अपने हाथ से घी-बूरा डालते हो। अगर तुम्हारी हिम्मत है तो अपनी कुटिया में आग लगाकर घी-बूरा डालकर देख लो। अगर भरोसा है तो अगले दिन तुम्हारी कुटिया बन जायेगी।' अब भरोसा किसको हो? वे बोले, 'ना बाबा, जैसी है वैसी ही ठीक है। आप के लिए तो बनाने आ गया, हमारे लिए नहीं आयेगा तो क्या होगा?' नामदेव जी के जीवन की यह घटना *सर्वभूतेषु य: पश्येद् भगवद्भावमात्मन:* का स्पष्ट दृष्टान्त है। उन्होंने अग्नि के रूप में भी अपने भगवान को ही देखा।

उनके जीवन की ऐसी एक और घटना है। वे जैसे-तैसे भिक्षा लाकर भोजन बनाया करते थे और अपने विठ्ठल भगवान को भोग लगाते थे। एक दिन विठ्ठल भगवान को भोग-प्रसाद लगाने के लिए रोटी रखी हुई थी और नामदेव जी घी लेने गए थे, रोटी में लगाने के लिये। उसी समय एक कुत्ता आया और रोटी लेकर भागा। जब कुत्ता रोटी लेकर भागा तो नामदेव जी उसे मारने के लिए या रोटी छुड़ाने के लिए डण्डा लेकर नहीं भागे। जानते हो वे क्या लेकर दौड़े? घी की कटोरी लेकर दौड़े। 'अरे विठ्ठला! सूखी रोटी मत ले जाओ, अगर ले ही जानी है तो घी लगा लेने दो, उसके बाद ले जाना। तुम्हीं मेरे ठाकुर हो।'

यह है ब्रह्ममय दृष्टि, भगवन्मय दृष्टि, कृष्णमय दृष्टि, राममय दृष्टि। ऐसी दृष्टि महापुरुषों के जीवन में होती है। आपके जो गुरु हैं, पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज, पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज, आप लोगों ने अनुभव किया होगा कि सब को यही लगता है कि गुरुजी हमसे ही सबसे ज़्यादा प्रेम करते हैं। लगता है न! लेकिन यह कैसे सम्भव है? दस लोगों के घर में एक व्यक्ति को ज़्यादा ध्यान देने लग जाओ, दूसरा चिढ़ जाता है, लड़ने लग जाता है, भाई-भाई में विवाद हो जाता है। लेकिन एक महात्मा, जिसके लाखों शिष्य हैं, उसके प्रत्येक शिष्य का यही अनुभव है कि गुरुजी सबसे ज़्यादा प्रेम हम ही से करते हैं। जानते हो इसके पीछे रहस्य क्या है? गुरुजी आपको शरीर रूप में प्रेम नहीं करते, बल्कि आपके अंदर अपने भगवान, अपने ठाकुर, अपनी आत्मा को देखते हैं। उस दृष्टि से वे प्रेम करते हैं, इसलिए उनका कहीं राग-द्वेष नहीं होता। जो मिला उसी का भला कर दिया।

हमारे पूज्य स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज जब बम्बई से वृंदावन जाते थे तो स्टेशन पर लगभग डेढ़-दो सौ लोग विदाई के लिए पहुँच जाते थे। एक बार ट्रेन लेट हो गई। भक्त लोगों का तो स्वभाव होता है। जब आये थे तो दो सौ लोग थे। जब पता लगा कि ट्रेन एक घण्टा लेट है, तो धीरे-धीरे एक घण्टे तक सौ लोग खिसक गये। जो लोग वास्तव में प्रेमी थे, वही वहाँ पर रह गये। उन्होंने कहा, 'महाराज, जब आप बम्बई से वृंदावन चले जाते हैं, तो यहाँ के लोग आपकी याद में रोते हैं। आपको वृंदावन जाने के बाद किसी की याद आती है कि नहीं?' स्वामी अखण्डानन्द जी ने कहा, 'सच बतायें या थोड़ा शिष्टाचार में बतायें?' भक्तों ने कहा, 'महाराज! सच बताइये।' स्वामीजी ने कहा, 'बम्बई सेन्ट्रल छोड़ने के बाद मुझे किसी की याद नहीं आती है। मैं तुम्हें शरीर रूप में याद नहीं करता, पर अपनी आत्मा के रूप में हमेशा तुम्हें अपने साथ अनुभव करता हूँ। इसलिए अलग से याद करने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती।'

लेकिन कोई विशेष परिस्थिति हो जाए, कोई दुर्घटना हो जाए, कोई शिष्य विशेष समस्या में पड़ा हो, तब हमलोगों का यही अनुभव रहा कि बिना किसी प्रयास के गुरुजी का फोन या संदेश पहुँच जाता था। ऐसा आप लोगों ने भी अनुभव किया होगा या करते होंगे। भले वैसे स्मरण न करें, लेकिन जब आप समस्या में होते हैं उस समय आपके गुरुदेव आपके साथ होते हैं, आपकी समस्याओं का समाधान करते हैं। यही महापुरुष की पहचान है। जिसके पास

जाने से आपका जीवन उन्नत होने लग जाये, भगवान की तरफ चलने लग जाये, ऐसे व्यक्ति महापुरुष हैं, ज्ञानी भक्त हैं।

भगवान पर भरोसा

भक्त प्रह्लाद के विषय में आप लोगों ने बहुत सुना होगा, उनकी कथा सब लोग जानते होंगे। उनके जीवन की दो बातें बड़ी विलक्षण हैं। अगर आप ध्यान से भागवत सुनेंगे या पढ़ेंगे, तो पाएँगे कि भक्त प्रह्लाद ने कभी भगवान को पुकारा नहीं, चाहे कितनी ही बड़ी आपत्ति-विपत्ति क्यों न आई। द्रौपदी ने पुकारा, गजेन्द्र ने पुकारा, वे आर्त भक्त थे, लेकिन प्रह्लाद ज्ञानी भक्त थे। वे जानते थे कि पुकारा उसे जाता है जो दूर होता है। पुकारा उसे जाता है जो जानता नहीं है, जो सर्वज्ञ नहीं है, जो समर्थ नहीं है, जो सर्वव्यापक नहीं है। अरे! मेरा परमात्मा तो यहाँ पर भी बैठा हुआ है, मेरे विषय में सब कुछ जानता है, इसलिए पुकारने की क्या आवश्यकता!

ज्ञानी भक्तों की सोच ऐसी होती है, जबकि हम लोग भगवान को सलाह देने लग जाते हैं। 'अरे! प्रभु आपने यह क्या कर दिया?' ऐसा कहने का अर्थ यह हुआ कि आपके भगवान का ज्ञान थोड़ा कम है और आपका थोड़ा ज्यादा। भगवान अगर आपसे पूछते तो आप सलाह देते कि आपको ऐसा करना चाहिए, यही मतलब हुआ न? छोटी-सी दुर्घटना हो जाए, बुखार ही आ जाए तो हम लोग पुकारने लगते हैं, 'अरे भगवान! आपके नाम की इतना माला करते हैं, आपने क्या कर दिया?'

भागवत में एक घटना आती है। यशोदा मैया की मटकी को एक बार भगवान कृष्ण ने फोड़ दिया और डर के मारे वहाँ से भागे। भगवान की बाल लीला थी, मैया को आनंद देते थे। आगे-आगे कन्हैया और पीछे-पीछे मैया, सारे गोकुल में दौड़ रहे। जब मैया थक गई और कन्हैया को नहीं पकड़ सकी, तो मैया ने सतयुग के भक्तों की सौगंध दिलाई, 'लाला! तुझे सतयुग के भक्तों की सौगंध है, खड़ा हो जा।'

कन्हैया खड़े हो गये। जैसे ही मैया पास आई, कन्हैया फिर भाग गए, पकड़ में नहीं आए। मैया ने तब त्रेता के भक्तों की कसम खिलाई, 'लाला! तुझे त्रेता के भक्तों की सौगंध है। खड़ा हो जा।' लाला खड़े हो गये। मैया आई तो फिर भाग गए। मैया ने सोचा, 'शायद कन्हैया का ज़्यादा प्रेम द्वापर के भक्तों से होगा, क्योंकि द्वापर में इनका अवतार हुआ है।' द्वापर के भक्तों



की सौगंध दिलाई, 'कन्हैया! खड़ा हो जा।' कन्हैया खड़े हो गए। मैया पास में आई, फिर भाग गए, पकड़ में नहीं आए।

मैया को भरोसा तो नहीं था, फिर भी सोचा, 'चलो, कलियुग के भक्तों से भी एक बार प्रयास करके देख लूँ।' कलियुग के भक्तों की सौगंध दिलाते हुए मैया ने कहा, 'लाला! तेरे को कलियुग के भक्तों की सौगंध है, खड़ा हो जा।' लाला खड़ा हो गया, मैया ने जाकर पकड़ लिया। कन्हैया भागा ही नहीं। मैया को बड़ा आश्चर्य हुआ। 'कन्हैया! क्या कलियुग के भक्त ही सर्वश्रेष्ठ हैं, तुम्हारे सबसे बड़े प्रेमी हैं?' कन्हैया ने कहा, 'नहीं माँ, नहीं।' माँ ने पूछा, 'फिर कैसे खड़े हो गए? दूसरे किसी युग के भक्तों का इतना ध्यान नहीं दिया।'

कन्हैया ने बड़ा सुंदर जवाब दिया, 'मैया! कलियुग के भक्त बहुत कमजोर हैं। अगर इनकी बात नहीं मानूँगा तो एक या दो माला जो ये रोज करते हैं, वह भी छोड़ देंगे। सतयुग के भक्त की बात नहीं मानूँगा तो चलेगा। त्रेता या द्वापर के भक्त की नहीं मानूँगा तो भी चलेगा, लेकिन कलियुग के भक्त की अगर बात नहीं मानूँगा तो ये माला हमेशा के लिए छोड़ देंगे।'

आप किस युग के भक्त हैं, यह देख लीजिए। आप क्या चाहते हैं, गुरुजी आपकी बात मानें या आप गुरुजी की बात। कई लोग नाराज़ हो जाते हैं, 'अरे! हमने गुरुजी से यह कहा था, गुरुजी ने सुना ही नहीं।' अरे भाई! आप गुरुजी

की बात मानने के लिए आए हो या गुरुजी को अपनी मनवाने के लिए? एक बार लखनऊ की एक महिला प्रोफेसर हमारे गुरुजी के पास वृन्दावन आईं। उन्होंने हमारे गुरुजी से कहा, 'गुरुजी! हमें आपसे गुरुदक्षिणा लेनी है।' फर्क समझ गए न? उन्हें कहना चाहिए था कि हमें आपसे गुरुदीक्षा लेनी है।

दीक्षा गुरु देता है और दक्षिणा शिष्य। लेकिन महिला प्रोफेसर ने हमारे गुरुजी से जाकर बड़ी विनम्रता से कहा, 'गुरुजी, हमें तो आप से ही गुरुदक्षिणा लेनी है।' गुरुजी मुस्कुराये, बोले, 'मैं आपको जरूर गुरुदक्षिणा दूँगा। चिंता मत करो।' कलियुग के भक्तों को इतना भी ज्ञान नहीं, इसलिए भगवान और महात्मा भी डरते हैं कि इनका थोड़ा सुन लो, नहीं तो माला जपना भी छोड़ देंगे।

प्रह्लाद जी की चर्चा हो रही थी। उनके जीवन में वास्तव में दो बातें अनुकरणीय हैं। पहली बात तो यह कि उन्होंने कभी जीवन में भगवान से प्रार्थना नहीं की, और दूसरी, वे कभी हिरण्यकशिपु से डरे नहीं। वह इतना शक्तिशाली था कि उसकी भृकुटि टेढ़ी होने से त्रिलोकी काँपने लग जाती थी। जब प्रह्लाद के ऊपर अस्त्र-शस्त्रों का, पहाड़ से गिराने का, समुद्र में डुबाने का या अग्नि में जलाने का कोई प्रभाव नहीं हुआ, तब अंत में हिरण्यकशिपु तलवार लेकर मारने के लिये आया और उसने प्रह्लाद से पूछा कि आखिर किसकी शक्ति से तू इतनी उद्दण्डता कर रहा है। प्रह्लाद ने कितना सुंदर जवाब दिया–

न केवलं मे भवतश्च राजन् स वै बलं बलिनां चापरेषाम्।
परेऽवरेऽमी स्थिरजंगमा ये ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः॥

'पिताजी, शक्ति दो नहीं, एक ही है। जो शक्ति मेरी सहायता कर रही है, वही शक्ति तुम्हारे अंदर भी विद्यमान है पिताजी! वही परमात्मा जो तुम्हारे अंदर है, मेरे अंदर भी है।' निर्भय होने का राज़ यही था।

ऐसा होता है ज्ञानी भक्त, ऐसा होता है महापुरुष, जिसके जीवन में भय नहीं होता, शोक नहीं होता, मोह नहीं होता। अगर किसी महात्मा के जीवन में ये तीनों दिखाई देते हैं तो थोड़ी परीक्षा कर लेना, बहुत जल्दी गुरु मत बनाना। कहा भी गया है, पानी पीजिए छानके और गुरु बनाइए जानके। भूत का शोक, वर्तमान का मोह और भविष्य का भय, इन तीनों में से अगर कुछ भी दिखाई देता है तो समझ लेना कि अभी इसने भगवान का अनुभव नहीं किया है। भगवान के अनुभव के बाद ये तीनों रह ही नहीं सकते।

मध्यम और साधारण श्रेणी के भक्त

ये तो हो गए उत्तम और श्रेष्ठ ज्ञानी भक्त के लक्षण। अगले श्लोक में हरि नाम के योगेश्वर कहते हैं—

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।
प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥11.2.46॥

'जो ईश्वर से प्रेम, ईश्वर के भक्तों से मित्रता, दीन-दुःखियों की सहायता और विरोधियों की उपेक्षा करता है, वह मध्यम कोटि का भक्त है।' प्रेम किससे करना चाहिए? ईश्वर से या ईश्वर प्राप्त महापुरुष से। दुनिया में प्रेम करोगे तो लाभ नहीं, धक्का ही मिलेगा। प्रेम की परिभाषा है—तत्सुखसुखित्व। प्रेम और स्वार्थ में यही फर्क है। आप जिसे अपना प्रेमी मानते हैं, जरा विचार कर लेना कि वह आपके सुखी होने में सुखी होता है या अपने को सुखी करके। वह आपकी खुशी में खुश रहता है या आपके द्वारा अपने को खुश करके खुश होना चाहता है? अगर उसकी खुशी में बाधा पड़ गई तो नाराज़ हो जाता है या नाराज़ नहीं होता? जो प्रेमी होता है, वह अपने आराध्य के सुख में सुखी रहता है। जो शिष्य होता है, वह गुरु के सुख में सुखी रहता है। जो अपने सुख में सुखी रहना चाहता है, वह प्रेमी या शिष्य नहीं, स्वार्थी होता है।

इसलिए प्रेम भगवान से करना, मित्रता भक्तों से करना और जो ज़रूरतमंद लोग हैं, जो दीन-दुःखी हैं, अगर आपको भगवान ने योग्यता दी है तो उनकी सहायता करना। जहाँ तक विरोधियों की बात है, हो सकता है आप कह दें, 'हम तो किसी का विरोध नहीं करते, फिर लोग हमारा विरोध क्यों करते हैं?' इसमें बड़ा रहस्य है। अगर आप भगवान के भक्त हैं, तो आपकी गति बढ़ाने के लिये, आपकी साधना बढ़ाने के लिए भगवान कभी-कभी जानबूझकर आपके पीछे विरोधी लगा देते हैं।

आपको एक घटना सुनाता हूँ। ब्रज में नन्दगाँव और बरसाना है। नन्दगाँव में कृष्ण भगवान का और बरसाने मे राधारानी का मंदिर है। एक बार बनारस से एक सज्जन, खेमका जी आये थे। मैं तब वृंदावन में विद्यार्थी था। मैं उन्हें मंदिरों का दर्शन कराने गया। नन्दगाँव के मंदिर में जाने के लिए सौ सीढ़ियाँ हैं। जैसे ही हम लोग वहाँ पहुँचे, सात-आठ पण्डों ने खेमका जी को घेर लिया। 'अपने पिताजी का नाम बताओ, अपना नाम बताओ।' दक्षिणा जो लेनी थी।

खेमका जी के दिल की बाईपास सर्जरी हो चुकी थी। डॉक्टरों ने उन्हें मना किया था कि एक साथ दस सीढ़ी से ज्यादा नहीं चढ़ना। पर खेमका जी बड़े पक्के थे, वे दक्षिणा देना नहीं चाहते थे। उन्होंने न अपना नाम बताया, न पिताजी का। अब आगे-आगे खेमका जी, पीछे-पीछे पण्डे, उनके पीछे हम। ना-ना करते-करते उन्हें ध्यान ही नहीं रहा, एक साथ सौ सीढ़ी चढ़ गए! मंदिर में पहुंच गये, दर्शन कर लिया। अंत में नाम बताना ही पड़ा, पण्डों ने छोड़ा नहीं, उनको दक्षिणा देनी ही पड़ी। लेकिन जब हम लोग नन्दगाँव से बरसाने जा रहे थे, खेमका जी ने कहा, 'स्वामीजी! आज एक बहुत अच्छी अनुभूति हुई।' मैंने सोचा, 'भगवान का कुछ दर्शन हुआ होगा, अनुभव हुआ होगा।' मैंने कहा, 'सुनाइए, क्या अनुभव हुआ?' बोले, 'हमें डॉक्टर ने एक बार में दस सीढ़ी से ज़्यादा चढ़ने के लिए मना किया था। लेकिन इन पण्डों ने हमें ऐसा घुमाया कि इनके चक्कर में हमें ध्यान ही नहीं रहा। सौ सीढ़ी एक बार में चढ़ गए, कोई दर्द नहीं हुआ। इन पण्डों ने हमारी गति बढ़ा दी, मंदिर में जल्दी पहुँचा दिया!'

जब आपकी साधना की गति धीमी हो जाती है, तब कभी-कभी भगवान आपके विरोधी भेज देते हैं, ताकि आपकी साधना की गति बढ़ जाए और जल्दी भगवान की प्राप्ति हो जाए। इसलिए विरोधी से दुश्मनी मत करना। सोच लेना कि भगवान ने पण्डों को भेज दिया है, हमारी गति बढ़ाने के लिए, हमें जल्दी पहुँचाने के लिए। योगेश्वर हरि अब आगे कहते हैं–

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥11.2.47॥

'जो भगवान के अर्चा विग्रह अर्थात् मूर्ति आदि की पूजा तो श्रद्धा से करता है, परन्तु भगवान के भक्तों या दूसरे लोगों की विशेष सेवा-शुश्रूषा नहीं करता, वह साधारण श्रेणी का भक्त है।' इस प्रकार से हरि नाम के योगेश्वर ने भक्तों के लक्षण बताये, संतों के लक्षण बताये। आपको ज्यादा बताने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि यहाँ संतों के लक्षण विद्यमान हैं। इस मुंगेर नगरी में रहने वाले आप लोग तो बहुत भाग्यशाली हैं, जिन्हें पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज का कृपा प्रसाद मिला है और पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज का कृपा प्रसाद मिल रहा है। इस प्रकार संतों के लक्षण, स्वभाव और जीवन सम्बन्धी एक और योगेश्वर की चर्चा आज पूरी हो गई।

माया से मुक्ति

25 अक्टूबर 2013

हम सभी लोग इस दिव्य विश्व योग सम्मेलन के तृतीय दिवस के संध्याकाल में श्रीमद्भागवत के नवयोगेश्वर संवाद में पुन: प्रवेश करते हैं। नवयोगेश्वरों से विदेहराज निमि अनेक प्रश्न करते हैं और उन्हीं के उत्तर वे नौ महात्मा देते जाते हैं। विदेहराज निमि ने आगे पूछा–

यथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभि:।
तरन्त्यञ्ज: स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम्॥11.3.17॥

विदेहराज निमि कहते हैं कि महाराज, गृहस्थ आश्रम में रहता हुआ सामान्य व्यक्ति भगवान की इस अत्यन्त कठिन माया को कैसे पार करता है, यह कृपा करके हमें बताइये।

माया का स्वरूप

पहले हम लोग समझ लें कि भगवान की माया क्या है। भगवान ने माया शक्ति को स्वीकार करके सृष्टि की रचना की, उसी माया की शक्ति के द्वारा वे सृष्टि का पालन करते हैं और उसी शक्ति द्वारा सृष्टि का संहार भी करते हैं। माया भगवान की शक्ति का ही नाम है।

रामचरितमानस में माया का स्वरूप भगवान राम ने लक्ष्मण जी को बड़े सरल शब्दों में इस प्रकार बताया है–

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥



जब हम एक सीमा खींच लेते हैं और परिच्छिन्नता के माहौल में जीने लग जाते हैं, तो इस सीमांकन का नाम है माया। यह 'मैं' हूँ, इस शरीर और शरीर से सम्बन्धित चीजें मेरी हैं और इसके अलावा जो सब कुछ है, वह दूसरे का है, यही माया है। थोड़े शब्दों में कहें तो समष्टि में हम जिसे माया कहते हैं, व्यष्टि में उसी को मन की मान्यता बोलते हैं।

इसे एक उदाहरण से समझ सकते हैं। किसी व्यक्ति को पुत्र-प्राप्ति नहीं होती और वह पुत्र गोद ले लेता है। कभी-कभी गोद लिए पुत्र से इतना प्रेम और ममता हो जाती है कि मानो अपना ही पुत्र हो। लेकिन देखा जाए तो क्या वह वास्तव में उस व्यक्ति का पुत्र है? नहीं है, पर व्यक्ति ने मान लिया है कि यह मेरा पुत्र है और अब पुत्र के साथ जितने व्यवहार होते हैं, जितनी आसक्ति होती है, जितनी ममता होती है, उस माने हुए पुत्र के साथ भी हो जाती है। कभी-कभी अपने पुत्र से इतनी नफरत हो जाती है कि उसके प्रति कोई अपनत्व नहीं रहता और गोद लिए पुत्र से इतना प्रेम हो जाता है कि अपना पुत्र जैसा लगने लग जाता है। अभिप्राय क्या हुआ? माया का जो व्यष्टि या सूक्ष्म रूप है उसका नाम है मन की मान्यता। मन से जिसे अपना मान लेते हैं उससे राग, और मन से जिसे पराया मान लेते हैं, उससे द्वेष हो जाता है। मन की ऐसी मान्यता का नाम ही माया है।

माया के विभाग

माया के दो विभाग हैं, विद्या और अविद्या। जो बन्धन में डालती है, उस माया का नाम अविद्या-माया है, और जो बन्धन से मुक्त करती है वह विद्या-माया है। ध्यान से सुनिये, क्योंकि आद्याशक्ति को भी कहीं-कहीं माया कह दिया गया है। भगवती जानकी जी को, भगवती राधारानी को भी माया कहा गया है। उस पराशक्ति को अविद्या-माया नहीं कहा जाता है, बल्कि दुनिया में राग-द्वेष, मोह-ममता, मैं-मेरे और तू-तेरे का जो बन्धन है, उसका नाम है अविद्या-माया। छुटकारा पाने का जो प्रश्न यहाँ पर विदेहराज निमि ने किया है, वह अविद्या-माया से ही सम्बन्धित है।

किसी से कहो कि समय हो गया है, अब तो थोड़ा घर-परिवार छोड़कर भजन-साधन में लगो, तो वे कहते हैं, 'महाराज! इतने बन्धन हैं, क्या करें? समय ही नहीं मिलता। बेटा ऑफिस चला जाता है, पोते को देखना पड़ता है।' हमारे गुरु, स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज कहा करते थे कि अगर तुम अपना बन्धन सचमुच दिखा दो तो मैं तुम्हारा बन्धन काट दूँगा, लेकिन पहले बन्धन तो दिखाओ। शास्त्र और भगवान का आदेश है कि पचास साल तक गृहस्थ आश्रम का ठीक से पालन करो, उसके बाद जब आपके बेटे-बेटियों की शादी हो जाए और आपके बेटे को भी बेटा हो जाए तो बन्धनों को काटना शुरू करो।

रोटीराम बाबा बड़े फक्कड़ संत थे। वे बड़ी अच्छी बात कहा करते थे– 'जब घर में बाबा कहने वाला यानि बेटे का बेटा आ जाए, तो समझ लो भगवान की तरफ से संकेत हो रहा है कि अब बाबा बनने का समय आ गया है।' बात समझ में आई भगवान की? समझ में तो आ जाती है लेकिन समस्या यही है कि जीवन में लाने में थोड़ी कठिनाई होती है।

मैं एक बार किसी सभा में रोटीराम बाबा का यह संस्मरण सुना रहा था। पूज्य बाबा कल्याणदास जी महाराज भी मंच पर बैठे हुए थे। उन्होंने मुझसे पूछा, 'स्वामीजी, बाबा कहने वाले के आ जाने के बाद भी बहुत लोग आश्रम में क्यों नहीं आते, साधन-भजन क्यों नहीं करते, बाबा के रास्ते पर क्यों नहीं चलते?' मैंने कहा, 'मालूम नहीं।' बोले, 'मैं बताता हूँ। दिनभर तो बेटे का बेटा बोलता है 'बाबा-बाबा', लेकिन शाम को जब बेटी आ जाती है तो बेटी का बेटा क्या बोलता है? 'नाना, नाना'। वह मना कर देता है। इसी का नाम है ममता, इसी का नाम है माया।' यहाँ पर इसी माया से छुटकारे का प्रश्न है।

बन्धन किसी रस्सी या जंजीर का नहीं, हमारी मन की मान्यता का है। घर-परिवार के ऐसे बन्धन हैं जो हमने मन से मान लिये हैं।

कई बार हमलोग सोचते हैं कि हम नहीं रहेंगे तो क्या होगा। हाँ, यह भी एक समस्या रहती है। इसके लिए दो-चार दिन बीमारी का नाटक करके देख लो और अगर उससे भी पता न लगे तो थोड़ा पागल बनकर देख लो। आपके बच्चे क्या करेंगे? जल्दी-जल्दी सब जगह हस्ताक्षर करवा लेंगे, 'इनका दिमाग गड़बड़ हो रहा है, बाद में पता नहीं करें न करें।' वे सारी व्यवस्था अपने-आप बिठा देंगे, 'पिताजी, आप यहीं रहिये, आपकी तबियत ठीक नहीं है।' अगर सेवा भाव नहीं होगा तो किसी तीर्थ में भेज देंगे और वहाँ आपके लिए एक कमरा रखवा देंगे। घर-व्यवसाय की सारी व्यवस्था वे अपने आप सम्भालने लग जायेंगे। अगर आपको विश्वास न हो तो दस दिन पागलपन या बीमारी का नाटक करके देख लेना, आपको पता लग जाएगा कि आपके न रहने पर क्या होगा।

हम नहीं रहेंगे तो क्या होगा, यह भी एक भ्रम है, ममता है, माया है। आप थोड़ा छोड़कर देखिये तो सही। कितनी बड़ी व्यवस्था चला रहे हैं भगवान। तब फिर क्या आप अपना चार-आठ आदमी का घर चलाते हो, या भगवान ने आपको निमित्त बनाया है और भगवान ही चलाते हैं?

मुक्ति की तीन शर्त्तें

महाराज निमि इसी माया से छूटने का उपाय पूछते हैं। यह जो अविद्या रूपी भगवान की माया है, इसे कैसे पार किया जाए। प्रबुद्ध नाम के योगेश्वर इस बात का जवाब देते हुए बड़ी सुन्दर बात कहते हैं–

कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च।
पश्येत् पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम्॥11.3.18॥
नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभमात्ममृत्युना।
गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः॥11.3.19॥
एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम्।
सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डलवर्तिनाम्॥11.3.20॥
तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥11.3.21॥



माया से छूटना कब होगा? जब हमारे जीवन में तीन शर्त्तें पूरी हो जायेंगी। पहली शर्त्त है, क्या हम घर-परिवार की मोह-ममता से वास्तव में छूटना चाहते हैं? बहुत कठिन काम है यह। दस-पन्द्रह साल पहले लोग हमसे कहते थे कि आपका परिवार तो धन्य हो गया। जब हम पूछते, 'क्यों?' तो बोलते, 'घर-परिवार का कोई व्यक्ति महात्मा बन जाए तो इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है।' यह मजाक की बात नहीं है, प्रह्लाद जी के प्रसंग में भगवान ने यह वचन दिया है प्रह्लाद जी को। हम कहते, 'जब यह इतने फायदे का सौदा है, तब अपने-अपने घर से एक-एक लड़के को महात्मा क्यों नहीं बनाते?' सब चुप हो जाते।

पहली शर्त्त यही है कि क्या वास्तव में हम भगवान की माया से छूटना चाहते हैं। दूसरे का बेटा महात्मा बन जाए तो भगवान की बड़ी कृपा, लेकिन अगर हम कह दें कि अपना एक बेटा बना दो, तो कहेंगे, 'बाबाजी, आपको इसलिये थोड़े ही घर पर बुलाया था!' अगले दिन से भिक्षा के लिए नहीं बुलायेंगे, सोचेंगे, 'यह बाबाजी तो खतरनाक है, हमारे बेटे को महात्मा बनाना चाहता है।'

क्या वास्तव में हम माया से छूटना चाहते हैं या केवल सुन लिया है कि माया बहुत दुष्कर है, हमें इससे छूटना है। क्या वास्तव में माया हमें काट रही है? घर-परिवार का दायित्व पूरा होने के बाद, बच्चों का विवाह होने के बाद क्या परिवार में रहना हमें काँटों जैसा लगता है? क्या भगवान का भजन अभी तक प्रारम्भ नहीं हुआ अच्छी तरह से? अभी तक हमारे जीवन में भगवान की कोई अनुभूति न होना क्या चुभ रहा है? क्या हमारे जीवन में छटपटाहट है कि कैसे भगवान के रास्ते पर चलें, कैसे हमें योग्य सद्गुरु मिलें, कैसे हमें सत्य का साक्षात्कार हो, कैसे हमें वास्तविक शान्ति का अनुभव हो? जीवन में ऐसी छटपटाहट का होना माया से मुक्ति की पहली शर्त्त है।

परम शान्ति का रहस्य

हमारे गुरुदेव, स्वामी अखण्डानन्द जी के जीवन की एक सत्य घटना है। गर्मियों के समय हमारे गुरुजी ऋषिकेश के परमार्थ निकेतन आश्रम में जाते थे और लगभग एक महीना वहाँ सत्संग होता था। पचास-पचपन साल का एक गृहस्थ साधक एक ही प्रश्न लेकर अनेक महात्माओं के पास गया था। उसने आकर गुरुजी से कहा, 'मुझे चाहे गंगा में कूदना पड़े या पहाड़ से, मैं गुरु आज्ञा से कुछ भी करने को तैयार हूँ। लेकिन मुझे अपने प्रश्न का समाधान चाहिए।' उसका प्रश्न था, 'पूर्ण शान्ति का अनुभव कैसे होता है?' पूर्ण शान्ति वह है जिसमें अशान्ति मिश्रित नहीं होती। जिसमें अशान्ति मिश्रित होती है वह दुनिया वाली शान्ति होती है और जिसमें अशान्ति मिश्रित नहीं होती वह परमात्मा के अनुभव की शान्ति होती है।

उस व्यक्ति के हृदय में छटपटाहट थी, वह सत्य को जानने के लिये बहुत व्यथित और व्याकुल था। वह शान्ति का अनुभव करने के लिए अनेक महात्माओं के पास गया, लेकिन जिसने स्वयं अनुभव न किया हो वह दूसरे को क्या अनुभव करवायेगा? सब लोगों ने एक ही स्वर में कह दिया, 'स्वामी अखण्डानन्द जी का शाम को गंगाजी के तट पर सत्संग होता है, तुम वहाँ जाओ।'

इस तरह वह स्वामी अखण्डानन्द जी के पास आया, चरणों में प्रणाम किया, और उनसे भी वही प्रश्न किया, 'मुझे पूर्ण शान्ति का अनुभव चाहिए। आप जो कहेंगे, मैं करने को तैयार हूँ। आप कहेंगे गंगा में कूद जाओ तो गंगा में कूद जाऊँगा।'

गुरु वह है जो हृदय की ग्रंथि को पहचान ले, साधक के हृदय के प्रश्न को जान ले। हमारे गुरुजी ने कहा, 'मैं जो कहूँगा, वास्तव में करोगे?' उसने कहा, 'आप जीवन देने के लिए कहेंगे तो जीवन भी दे दूँगा, लेकिन पूर्ण शान्ति क्या होती है, मुझे इसका अनुभव करना है।'

तब हमारे गुरुजी ने ऐसी चीज कही जिसे सुनकर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। गुरुजी ने कहा, 'पूर्ण शान्ति अनुभव करने की तुम्हारी यह जो इच्छा है, इसका भी परित्याग कर दो।' इस बात को जरा ध्यान से सुनिये। गुरुजी ने पहचान लिया कि इस व्यक्ति की बाकी सारी सांसारिक इच्छाएँ समाप्त हो चुकी हैं। केवल शान्ति की अनुभूति की एक इच्छा बची है, और यही इच्छा इसकी शान्ति पर पर्दा डाले हुए है।

यह है सच्चा गुरुत्व, जो साधक की ग्रंथि को पहचान ले और उसके अनुरूप उत्तर दे। जब गुरुजी ने उस व्यक्ति से कहा कि तुम शान्ति की अनुभूति की इच्छा का भी परित्याग कर दो, उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा, 'मैं शान्ति के लिए ही घूम रहा हूँ और आप कहते हैं कि यह इच्छा भी छोड़ दो!' गुरुजी ने कहा, 'तुमने कहा था न कि जो मैं कहूँगा वही करोगे?' वह बोला, 'हाँ, कहा था।' गुरुजी ने कहा, 'तो फिर मैं जो कह रहा हूँ, करो। इस इच्छा का भी परित्याग कर दो।'

गुरुजी की आज्ञा मानकर जैसे ही उसने शान्ति की इच्छा का भी परित्याग किया, वह 45 मिनट तक बिल्कुल समाधिस्थ हो गया। वह निर्विकल्प अवस्था में बैठा रहा, उसका शरीर हिल नहीं रहा था, आँखों की पलकें उठ नहीं रही थीं। 45 मिनट में उसका चेहरा बदल गया, चेहरे पर एक मस्ती आ गई। जब वह उठा तो गुरुजी के चरणों में साष्टांग प्रणाम करके बोला, 'मुझे सच्ची शान्ति का अनुभव हो गया। आज पता लगा कि सच्ची शान्ति क्या होती है।'

मुक्ति के लिए छटपटाहट

क्या वास्तव में हमारे हृदय में ऐसी छटपटाहट है कि हम माया को कैसे पार करेंगे, हम संसार बंधन से कैसे छूटेंगे, हम भगवान का अनुभव कैसे करेंगे? पहला प्रश्न यह है। केवल कहीं से सुनकर कह दिया, 'महाराज, माया बहुत कठिन है, इससे कैसे पार हुआ जाए', इससे काम नहीं चलेगा। क्या आप वास्तव में माया से पार होना चाहते हैं, या परिवार वालों के साथ प्रेम और मोह के बंधन में बंधे रहना चाहते हैं?

गृहस्थ लोगों को पुत्र से ज्यादा पौत्र से प्रेम हो जाता है। उनसे जब पूछा जाता है कि भाई, बेटे से ज्यादा प्रेम पोते से कैसे हो गया, तो बड़ा सुन्दर उत्तर देते हैं। कहते हैं, 'महाराज, आप नहीं जानते, मूल से ज्यादा ब्याज प्यारा होता है!' आपको एक सत्य घटना सुनाता हूँ। पूज्य स्वामी वामदेव जी महाराज बड़े विरक्त महापुरुष थे। उन्हीं से मैंने वेदान्त और न्याय का अध्ययन किया। वे भिक्षा माँग कर खाते थे। एक बार अलीगढ़ जिले के किसी गाँव में भिक्षा माँगने गए थे। वहाँ पर उन्होंने देखा कि किसी घर के दरवाजे पर पचहत्तर साल का बूढ़ा बैठा है और उसका पाँच साल का पोता हाथ में जूता लिए उसके सिर पर मार रहा है। बेटा दफ्तर गया हुआ था, और बेचारा बूढ़ा रो रहा था, 'क्या यही दिन देखने के लिए मैंने सब कुछ किया था?'

स्वामीजी ने कहा, 'यहाँ रोता क्यों है? वृन्दावन पास में है, जाकर भजन कर। बेटा हो गया, बेटे का बेटा हो गया। अब तेरा घर में क्या काम?' जानते हो उसने क्या कहा? 'स्वामीजी! पोता मेरा है, जूता मेरा है और सिर भी मेरा है। अगर मेरे सिर को मार रहा है तो आपको क्या तकलीफ है?' रो भी रहा है, लेकिन जब कोई छोड़ने के लिए कहता है तो उसी से झगड़ पड़ता है!

यह घटना तो मैंने सुनी थी, पर एक घटना मैंने खुद देखी। मैं जबलपुर में एक जगह भागवत कथा कर रहा था और वहाँ मैंने यह घटना सुनाते हुए कहा कि दुनिया में ऐसे-ऐसे लोग भी होते हैं। संयोग से कथा में एक बूढ़ा व्यक्ति पोते को गोद में लिये बैठा था। वह जाति से क्षत्रिय था। क्षत्रियों का स्वभाव बड़ा तेज होता है। वह कथा के बीच में ही उठकर खड़ा हो गया और बोला, 'स्वामीजी! आपको मालूम नहीं है, पोते के जूते खाने में कितना आनन्द आता है!' मैंने कहा, 'वह आनन्द मुझे मालूम करने की जरूरत भी नहीं, आप ही रखे रहो।' अगर पोते की गाली में, जूते में भी आनन्द आता है तो अभी आप माया से पार नहीं होना चाहते हैं।

जब आपको संसार काटने लग जाए, दुनिया के कर्त्तव्य पूरा होने के बाद एक छटपटाहट होने लगे, तब जानिए कि आपने पहली शर्त्त पूरी की है। 'यह मनुष्य जीवन ,जो अत्यन्त दुर्लभ है, जिससे भगवान को प्राप्त किया जा सकता है, जिसमें शुद्ध सत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है, क्या यह



जीवन ऐसे ही निकल जायेगा?' क्या ऐसी छटपटाहट कभी होती है? उस छटपटाहट का स्वरूप क्या है?

हमारे गुरुजी कहते थे कि जब आपका बच्चा स्कूल जाता है तो उसका लौटने का समय निश्चित रहता है। अगर उसके लौटने में आधा घण्टा विलम्ब हो जाए तब आपके मन में कैसी छटपटाहट होती है? 'पता नहीं क्या हुआ, बस नहीं पहुँची या कहीं चला गया!' इसका नाम है छटपटाहट। क्या ऐसी छटपटाहट कभी भगवान के लिए होती है? अगर सचमुच ऐसी छटपटाहट होती है तो समझो कि पहली सीढ़ी पार कर गए।

अनमोल जीवन

यह जीवन व्यर्थ गँवाने के लिए नहीं है। जब समय पूरा हो जायेगा तो करोड़ों रुपये देकर भी आप इसे वापिस नहीं ला सकते। यह जीवन बड़ा कीमती है। इस जन्म के पहले आप किस परिवार में थे, आपको मालूम नहीं, और इस जन्म के बाद किस परिवार में जायेंगे, यह भी आपको मालूम नहीं। यह थोड़े दिनों का सम्बन्ध है, थोड़े दिनों की धर्मशाला है। जैसे आप लोग पाँच दिनों के लिए देश-विदेश से यहाँ आकर आपस में मिल रहे हैं, लेकिन छठवें दिन अपने-अपने स्थान को चले जायेंगे, वैसे ही समझ लीजिये कि यह संसार भी पचास-साठ सालों का मिलन है। परिवार में कौन कहाँ से आया और कौन कहाँ चला जायेगा, मालूम नहीं। जब कोई जाता है, तब क्या आपको बताकर जाता है? ठीक है, माना कि बताकर नहीं जाता क्योंकि बताना उसके हाथ में नहीं, लेकिन जाने के बाद क्या वह आपको कभी फोन करता है, कभी ई-मेल भेजता है कि मैं यहाँ पर रह रहा हूँ, मुझ से आकर मिलना। अब बतलाइये वह वास्तव में आपका था या नहीं? आपका होता तो फोन या ई-मेल करता न!

सच्चाई की प्राप्ति के लिए क्या आपके हृदय में उत्कट अभिलाषा है, यह पहला प्रश्न है। हमें दुनिया से कैसे छुटकारा मिले, कैसे सत्य का साक्षात्कार हो, कैसे शान्ति का अनुभव हो, अगर आपके हृदय में इस जिज्ञासा का जागरण हो गया है तो पहली सीढ़ी आपने पार कर ली।

सद्‌गुरु की प्राप्ति

आपके हृदय में छटपटाहट आ गई है, जिज्ञासा आ गई है, मुमुक्षा आ गई है, लालसा आ गई है, तो अगली शर्त्त क्या है? क्या आपको कोई जीवनमुक्त

महापुरुष सद्गुरु के रूप में मिले हैं? यह दूसरी शर्त्त है, जीवनमुक्त महापुरुष। यह हमारा-आपका सौभाग्य है कि स्वामी सत्यानन्द जी महाराज, स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज और स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज ऐसे महापुरुष हैं जो स्वयं तो मुक्त हैं ही, आपको भी मुक्त कर सकते हैं। लेकिन इस बात का ध्यान भी जरूर रखियेगा कि जितने महापुरुष होते हैं, यहाँ तक कि भगवन भी जब अवतार लेकर आते हैं, तो ऐसी-ऐसी लीलाएँ करते हैं कि उन्हें पहचानना थोड़ा कठिन हो जाता है। हम लोगों को लगता है कि ये कैसे महापुरुष हैं, ये तो नाच रहे हैं, गा रहे हैं, हँसी-मजाक कर रहे हैं।

भगवान कृष्ण के प्रति भी उनके भक्तों का ऐसा ही भाव था। जब भगवान का स्वधाम-गमन हो गया, बाकी लोगों की बात छोड़ दीजिये, स्वयं अर्जुन का यह वक्तव्य था युधिष्ठिर के प्रति– *वंचितोऽहं महाराज हरिणा बंधुरूपिणा*– 'भैया, भगवान कृष्ण ने हमलोगों को छल लिया है।' छल लेने का अभिप्राय क्या है? 'भगवान कृष्ण ने जीवनभर बंधु की तरह साथ दिया, कैसी-कैसी लीलाएँ करते रहे, पर हम उन्हें कभी पहचान नहीं पाए!'

आप जानते हैं न भगवान कृष्ण क्या-क्या करते थे? भगवान कृष्ण ने अर्जुन का रथ तो चलाया ही, लेकिन श्रीमद् भागवत में एक बात और लिखी है, जिसे पढ़कर हृदय द्रवित हो जाता है। अर्जुन के रथ के घोड़े जब कभी थक जाते थे, तब भगवान कृष्ण रथ से उतरकर उन घोड़ों की मालिश कर देते थे। ऐसे हमारे सनातन धर्म के भगवान हैं, जो भक्त की ही नहीं, भक्त के घोड़ों की भी सेवा करते हैं! भगवान श्रीकृष्ण का ऐसा स्वरूप है! अगर भगवान अपने भक्त के घोड़ों की भी सेवा करें तो कभी-कभी भ्रम तो हो ही जाएगा न कि ये भगवान हैं भी या नहीं। भगवान कृष्ण के विषय में अर्जुन ने भी ऐसी भूल की थी। ऐसी भूल आप मत करना।

स्वामी अखण्डानन्द जी को इस लोक से गये लगभग पचीस साल हो गये, लेकिन आज उनके जितने वरिष्ठ शिष्य हम से मिलते हैं, उन सबका प्राय: एक ही अनुभव है, 'गुरुजी को हमने उनके जीवनकाल में पहचाना नहीं। वे साक्षात् भगवान के स्वरूप थे।' आप लोगों को स्वामी सत्यानन्द जी और स्वामी निरंजनानन्द जी जैसे महापुरुषों के सान्निध्य का सौभाग्य मिला है। उनकी लीलाओं को देखकर, उनके अभिनय को देखकर, उनकी क्रियाओं को देखकर आप यह भूल मत करियेगा, क्योंकि महापुरुष बड़े सहज और सरल होते हैं। परमात्मा स्वयं बिल्कुल सहज हैं। जो उनका अनुभव कर लेते हैं

उनका जीवन भी उतना ही सरल और सहज हो जाता है, वे कहीं किसी बन्धन में नहीं पड़ते। उनके जीवन में कोई प्रतिबन्ध नहीं होता।

सद्‌गुरु के साथ व्यवहार

दूसरी शर्त्त यही है कि क्या हमें ऐसे जीवनमुक्त महापुरुष का सान्निध्य मिला है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं–

जब द्रवहिं दीनदयालु राघव साधु संगति पाइये।
जहीं दरस परस समागमादिक पाप रासि नसाइये॥

जब गुरु मिल जाएँ तब तीन चीजों का ध्यान रखना। उनका दर्शन भी करना, चरण स्पर्श भी करना, लेकिन यहीं तक सीमित मत रहना। हम कई लोगों से पूछते हैं, 'कुछ पूजा-पाठ करते हो?' बोलते हैं, 'हाँ महाराज, जब ऑफिस जाते हैं तो घर में भगवान को प्रणाम करके चले जाते हैं।' मानो भगवान पर बड़ी कृपा कर रहे हैं! दर्शन कर लिया, प्रणाम कर लिया, बस हो गया काम, ऐसा नहीं है। समागम भी होना चाहिए। समागम का अर्थ होता है सत्संग, शरणागति और समर्पण। ये जो बातें आप सुन रहे हैं, कई बार सुनने के बाद भी जीवन में नहीं उतरतीं। उसका कारण है अन्तःकरण की अशुद्धि और कलुषता। वह कलुषता दूर होती है गुरु की निःस्वार्थ सेवा से। बिना किसी लालच या फल की इच्छा से जो सेवा की जाती है, उससे हृदय का कल्मष दूर होता है और कल्मष दूर होने के बाद जब गुरुदेव ज्ञान का उपदेश देंगे तब हृदय से अविद्या का पर्दा हट जायेगा और परमात्मा की अनुभूति हो जायेगी, माया से छुटकारा मिल जायेगा। श्रीमद् भगवद्‌गीता में यही तीन बातें बताई गई हैं–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥4.34॥

अगर सद्‌गुरु मिल जाएँ तो पहला काम क्या करना? प्रणिपात अर्थात् साष्टांग प्रणाम। साष्टांग प्रणाम माने पूर्ण समर्पण। प्रणाम की भी विधा होती है। जहाँ पूर्ण समर्पण होता है, वहाँ व्यक्ति साष्टांग प्रणाम करता है। अगर वह नहीं कर सकता तो पैरों में हाथों का स्पर्श करके प्रणाम किया जाता है, जिससे गुरु की सकारात्मक ऊर्जा अपने जीवन में आ जाती है। वह भी नहीं होवे तो सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर प्रणाम किया जाता है। अगर बहुत



भीड़ हो और सब लोग सोचने लग जाएँ कि हमलोग साष्टांग प्रणाम ही करेंगे, तब तो गुरुजी मंच तक पहुँच ही नहीं सकेंगे। ऐसे में समय को देखकर दूर से ही 'हरि: ॐ' कर लेना चाहिए, सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर। सिर झुकाना माने अभिमान का समर्पण और हाथ जोड़ना माने अपने कर्म का समर्पण। दोनों समर्पित हो जाएँ गुरु-चरणों में, यही सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर प्रणाम करने का अभिप्राय होता है।

प्रणिपात के बाद आता है परिप्रश्न। अवसरोचित सुन्दर प्रश्न करें। जब गुरु प्रसन्न होवें, आदेश देवें, 'हाँ, पूछो क्या बात है?' तब उनसे जीवन सम्बन्धी प्रश्न करें, व्यर्थ का प्रश्न न करें। प्रश्न भी अनेक तरह के होते हैं। गुरु की योग्यता का पता लगाने के लिए भी प्रश्न होते हैं। अपनी योग्यता दिखाने के लिए भी प्रश्न होते हैं। ऐसे लोग संस्कृत में या दूसरी भाषाओं में दस मिनट तक प्रश्न ही पूछते रहेंगे। हमारे गुरुजी के यहाँ एक बार काशी के एक पण्डित आये। दस मिनट तक वे संस्कृत में प्रश्न पूछते रहे। गुरुजी ने बाद में कहा कि मैं समझ गया आप प्रश्न नहीं पूछना चाहते हैं, केवल अपनी विद्वत्ता दिखाना चाहते हैं। वे बेचारे चुप हो गये। गुरु तो समझ लेते हैं कि व्यक्ति का अभिप्राय क्या है।

कभी-कभी बेवकूफी के भी प्रश्न होते हैं। हमारे आश्रम में काशी से रामायण के एक कथाकार आये थे। कथा के दौरान हमारे आश्रम के एक व्यक्ति ने पूछा, 'महाराज! लंका में हनुमान जी की पूँछ में सबसे पहले आग किस निशाचर ने लगाई थी?' अरे! पता भी लग जायेगा तो तुम्हारा क्या लाभ होने वाला है? इस बेकार के प्रश्न से पण्डित जी को बहुत गुस्सा आया। बोले, 'जिस निशाचर ने सबसे पहले आग लगाई थी, वह तू ही था। तूने हनुमान जी को भी कष्ट दिया था और अब मुझे कष्ट देने के लिए यहाँ बचा हुआ है।'

ऐसे प्रश्नों का कोई प्रयोजन नहीं। सुन्दर प्रश्न होवें, जीवन के प्रश्न होवें। और ऐसा नहीं कि केवल प्रश्न ही प्रश्न पूछते चले जाएँ। गुरुदेव मिले

नहीं कि प्रश्न चालू कर दिये और गुरुजी का सिर ही खा गये! वास्तव में अपने जीवन के प्रश्न बहुत कम होते हैं। जो ज्यादा प्रश्न पूछे समझ लेना कि वह या तो अपनी विद्वत्ता दिखा रहा है या जीवन में वह कुछ करने वाला नहीं है। इसलिए *तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया*– गुरुजी को प्रणाम कीजिये, प्रश्न पूछिये और फिर गुरुजी के आश्रम की सेवा कीजिये।

सेवा का अर्थ केवल एक सूत्र में याद रख लीजिये– *अग्या सम न सुसाहिब सेवा।* गुरुजी की आज्ञा के पालन का नाम ही सेवा है। इसके अलावा और कोई सेवा नहीं होती। अगर वे कहते हैं कि तुम्हें आश्रम में रहना है तो आश्रम में रहना सेवा है। अगर वे कहते हैं कि आश्रम के बाहर रहना है तो आश्रम के बाहर रहना भी सेवा है। उस आज्ञा को कभी अन्यथा नहीं लेना चाहिए।

गुरु कृपा

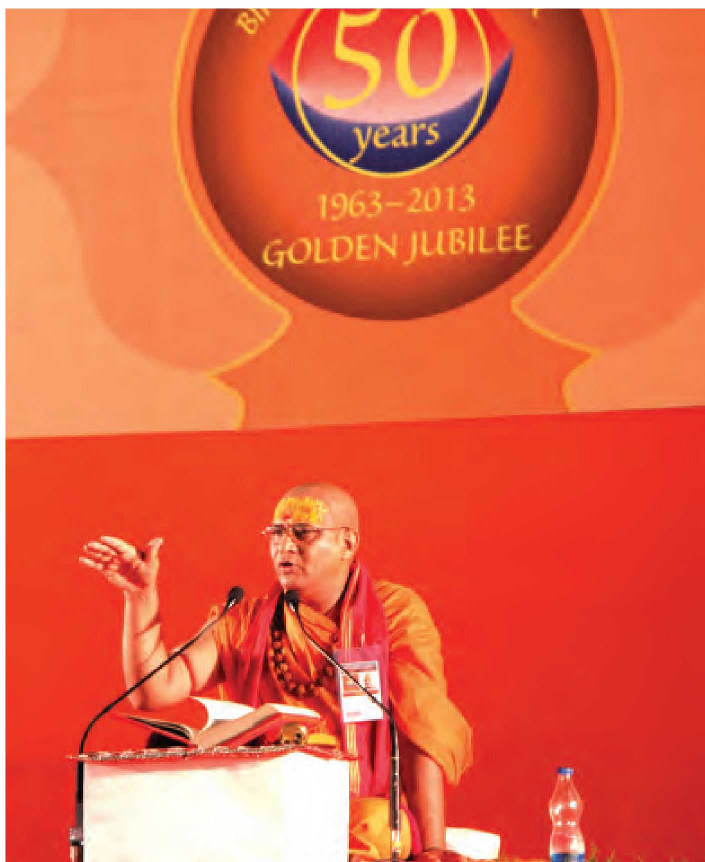
अगर ऐसे गुरु मिल जाएँ तो दो शर्त्तें पूरी हो गईं। पहली शर्त्त है, 'क्या तुम्हारे हृदय में सच्ची जिज्ञासा है?' अगर है, तो दूसरी शर्त्त है, 'क्या आपको किसी जीवनमुक्त महापुरुष या संत का सान्निध्य मिला है?' तीसरी शर्त्त है, 'अगर ऐसे संत मिल गये हैं तो घर छोड़ने के बाद भी क्या आप अपने लक्ष्य पर स्थिर हैं?'

स्वामी रामानन्द जी नर्मदा किनारे के बड़े अच्छे महापुरुष हुए हैं। वे साधकों के लिए एक वाक्य कहा करते थे, 'साधक को हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि जिस दिन उसने भगवान के रास्ते पर चलने के लिए घर छोड़ा था, उस दिन उसके हृदय में क्या भाव और क्या लक्ष्य था। उस भाव और लक्ष्य को अगर वह हमेशा याद रखेगा तो रास्ते से भटकने का अवसर नहीं आयेगा।' अगर ऐसे गुरु मिल जाएँ जैसे हमलोगों को मिले हैं, उसके बाद भी क्या हम और आप अपने लक्ष्य पर स्थिर हैं? हम घर-परिवार छोड़कर यहाँ पर क्यों आये हैं? हमारे जीवन का उद्देश्य क्या था? सत्य का साक्षात्कार, शान्ति का अनुभव, यही न। इस लक्ष्य पर अगर हम निश्चित रहेंगे तो प्रबुद्ध नाम के योगेश्वर कहते हैं, 'गुरु की कृपा से अविद्या की निवृत्ति हो जायेगी और परमात्मा का साक्षात्कार हो जायेगा।'

आप जानते हैं गुरु कृपा का क्या स्वरूप होता है? आखिर गुरु क्या करते हैं? सिफारिश। मान लीजिए किसी अफसर से कोई समस्या आ रही हो और आपका कोई करीबी मित्र अफसर से भी बहुत नजदीक हो तो वह अफसर से क्या कहेगा? 'जो भी इससे हुआ, सो हुआ। अब आप थोड़ा अनदेखा कर

देना।' इसी तरह महात्मा लोग साधना तो करवाते ही हैं, लेकिन अगर साधना में कोई कमी रह भी जाए तो वे भगवान से सिफारिश कर देते हैं, 'कोई बात नहीं। अब इसको अनदेखा कर दीजिए और अपने जीवन में इसे उठा दीजिए, अपने धाम में बुला लीजिए, अपने चरणों में रख लीजिए।' यह गुरु कृपा का स्वरूप होता है। कृपा का मतलब जहाँ अधिकार की जरूरत नहीं होती।

माया से मुक्ति के लिए यही तीन शर्त्तें हैं, 'क्या हमारे जीवन में माया को पार करने की छटपटाहट है? क्या हमें मायामुक्त महापुरुष मिले हैं? क्या हम अपने लक्ष्य पर स्थिर हैं?' अगर ठीक गुरु मिल जाएँ, जैसे आप लोगों को मिले हुए हैं, तो हमेशा उनकी सेवा करना और शरणागत रहना। गुरु और भगवान की कृपा से हमलोग माया से अवश्य पार हो जायेंगे।



भगवान का स्वरूप और उनकी भक्ति

26 अक्टूबर 2013

इस विश्व योग सम्मेलन में प्रतिदिन हमलोग चर्चा कर रहे हैं कि श्रीमद् भागवत के नव योगेश्वर प्रसंग में विदेहराज निमि ने नौ महात्माओं से कौन-कौन से प्रश्न पूछे और उन्होंने उन प्रश्नों के क्या उत्तर दिए। इस क्रम में चर्चा चल रही थी कि सद्गुरु की प्राप्ति हो जाए और सद्गुरु के चरणों में हमलोग अपने लक्ष्य पर स्थिर रहकर सेवा में लगे रहें तो हमें जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है। आत्मानुभूति, ब्रह्म-साक्षात्कार, ईश्वर-दर्शन या समाधि-जीवन-लक्ष्य का नाम कुछ भी रख लीजिए, वह आपकी मान्यता है, लेकिन कुल मिलाकर उसका अर्थ है पूर्ण शान्ति का अनुभव। इसके लिए योग्य सद्गुरु और योग्य शिष्य, दोनों की आवश्यकता है। योग्य शिष्य का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जिसके जीवन में वास्तविक जिज्ञासा है और वह गुरु के पास केवल उसी जिज्ञासा के लक्ष्य से आया है। इसके अलावा उसका कोई उद्देश्य नहीं है। ऐसे शिष्य को भगवान की, ब्रह्म की अनुभूति अवश्य होती है।

विदेहराज निमि ने अगला प्रश्न पूछा, 'आप जो कहते हैं कि भगवान या ब्रह्म की अनुभूति होती है, उस भगवान का स्वरूप क्या है? भगवान किसे बोलते हैं? नारायण किसे कहते हैं? आप कृपा कर हमें बताइये।'

नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।
निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः॥11.3.34॥

भगवान के तीन रूप हैं–निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार और सगुण-साकार। यहाँ पर भगवान के निर्गुण-निराकार और सगुण-निराकार, इन दो

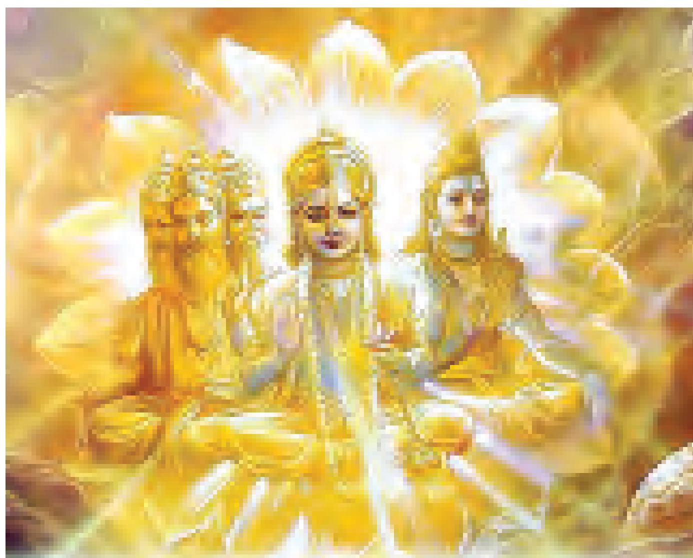
रूपों का वर्णन है। सगुण-साकार का वर्णन आगे हुआ है। पिप्पलायन नाम के योगेश्वर कहते हैं–

स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य
यत् स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद् बहिश्च।
देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन
सञ्जीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र॥ 11.3.35॥

यहाँ पर परमात्मा के सगुण-निराकार स्वरूप का वर्णन है। कौन है परमात्मा? वही जो इस संसार की सृष्टि के, पालन के और संहार के मुख्य कारण या मुख्य कर्त्ता हैं। या ऐसे कहें कि जो ब्रह्मा बनकर सृष्टि बनाते हैं, विष्णु बनकर सृष्टि का पालन करते हैं और शिव बनकर सृष्टि का संहार करते हैं अर्थात् इस जगत् की सृष्टि, पालन और प्रलय के जो हेतु हैं, उनका नाम नारायण है, वही भगवान हैं। यहाँ पर 'हेतु-अहेतु' दोनों का प्रयोग होता है, माने हेतु हैं और नहीं भी हैं। सृष्टि-पालन-प्रलय के कारण हैं और कारण नहीं भी हैं। आप कहेंगे दोनों एक साथ कैसे हो सकता है? साधक की दृष्टि में सृष्टि है, संसार है। जिसकी दृष्टि में संसार है, उस संसार रूपी कार्य का कुछ कारण बताना पड़ेगा। जब सिद्धावस्था आ जाती है, अनुभूति का स्तर आ जाता है तो वहाँ पर कार्य नहीं रहता। जब कोई कार्य ही नहीं तो कारण किसका होगा?

कार्य और कारण

वेदान्त में इसे समझने के लिए प्राय: स्वप्न का दृष्टान्त दिया जाता है। हम और आप जब सो जाते हैं तो स्वप्न में बहुत सारी सृष्टि का निर्माण होता है। लेकिन उस दुनिया के सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता कौन हैं, कभी विचार किया? स्वप्न में आपने जो सारी दुनिया देखी, ट्रेन देखी, गाड़ी देखी, सड़क देखी, दिल्ली देखा, पेड़ देखा, शत्रु देखा, मित्र देखा, उस दुनिया को बनाने वाला कौन है? मान लिया कि इस दुनिया को ब्रह्माजी ने बनाया, लेकिन उस स्वप्न की दुनिया को बनाने वाला कौन है? अगर इस दुनिया को माया ने बनाया तो माया का जो सूक्ष्म रूप है, जो व्यष्टि रूप है यानि मन, उस मन ने उस दुनिया का निर्माण किया। अगर ब्रह्माजी इस दुनिया को बनाते हैं तो आप स्वप्न की दुनिया को बनाते हैं, विष्णुजी इस दुनिया का पालन करते हैं तो आप स्वप्न की दुनिया का पालन करते हैं, भगवान शंकर इस दुनिया का



संहार करते हैं तो आप जागने के बाद स्वप्न की दुनिया का संहार कर देते हैं। तब स्वप्न की दुनिया के ब्रह्मा-विष्णु-महेश आप हुए कि नहीं?

वेदान्त में यह दृष्टान्त व्यष्टि-समष्टि समझने के लिए बताया जाता है। समष्टि के ब्रह्मा-विष्णु-महेश वे हैं जो भगवान के अवतार या सगुण स्वरूप माने जाते हैं और स्वप्न की दुनिया के ब्रह्मा-विष्णु-महेश आप स्वयं हैं। जागने के बाद कोई पूछे कि स्वप्न की जो दुनिया बनी, उस कार्यरूपी दुनिया का कारण कौन था, तो आप बोलेंगे, मैं था। लेकिन अगर और गम्भीरता से विचार करें तो स्वप्न की दुनिया थी ही नहीं। जागने के बाद कोई आपसे कहे कि आपको स्वप्न का एक किलो सोना देने वाले हैं, तो आप खुशी से स्वीकार करोगे या उसका मजाक बनाओगे? स्वप्न का सोना! स्वप्न की दुनिया जब वास्तव में थी ही नहीं, कार्य था ही नहीं, तो कारण किसे कहा जायेगा?

इसी तरह इस जाग्रत संसार के रचयिता, पालनकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। वे इस दुनिया के कारण हैं क्योंकि दुनिया कार्य है। लेकिन जिसकी दृष्टि में यह दुनिया ब्रह्म रूप दिखाई देने लग जाती है, नाम-रूप बाधित हो जाता है, सत्-चित्-आनन्द के रूप में अपने स्वरूप का अनुभव हो जाता है, वहाँ न कोई कार्य होता है, न ही कारण। उसी शुद्ध ब्रह्म को हमलोग परमात्मा या नारायण कहते हैं। तो यह हुआ नारायण का स्वरूप।

थोड़ी और सरलता से समझ लीजिए। यहाँ महर्षि व्यासजी ने कितने सुन्दर ढंग से समझाया है– *देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन।* हमारा शरीर, हमारी इन्द्रियाँ, हमारे प्राण, मन, बुद्धि, अन्त:करण चतुष्टय कैसे संचालित होते हैं? इनको जो शक्ति देने वाला है, जो देखने वाला है, जो अधिष्ठान है, उसी का नाम नारायण है, परमात्मा है। लेकिन इनका संचालन करने वाला, देखने वाला कौन है, कभी विचार किया? हमलोग प्राय: कहते हैं कि आज हमारा मन बड़ा प्रसन्न है या आज हमारा मन बड़ा दु:खी है। इसका मतलब आप मन नहीं, मन को देखने वाले हैं। बुद्धि को कोई बात समझ में आ गई, इसे देखने वाला कौन है, इसे बताने वाला कौन है? यह किसकी समझ में आया? वह आप हैं। आज हमारी बुद्धि में समझ में नहीं आया, यह भी समझने वाला कौन है? आप ही गवाही देते हैं न! इसी का नाम साक्षी है, द्रष्टा है, परमात्मा है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी

पूज्य रोटीराम बाबा हमारे देश के बड़े सिद्ध महापुरुष हुए हैं। वे जंगल में रहा करते थे, बड़ी सुन्दर बात कहते थे, 'क्या कभी विचार किया कि जैसे सारे ब्रह्माण्ड में परमात्मा व्यापक है, वैसे ही सारे पिण्ड में यानि पूरे शरीर में आप स्वयं व्यापक हैं?' कहा जाता है कि परमात्मा को दूसरे प्रकाश की जरूरत नहीं है, वे स्वयंप्रकाश हैं। स्वयंप्रकाश का क्या अर्थ होता है? जिसे सूर्य की या चन्द्र की या बिजली की रोशनी की जरूरत नहीं है, उसका नाम है स्वयंप्रकाश।

आप भी व्यष्टि रूप में, जीवात्मा के रूप में स्वयंप्रकाश हैं। कैसे? पूज्य रोटीराम बाबा सरल भाषा में कहते हैं, 'देखिये, आप यहाँ पर बैठे हैं। मान लीजिये कि आपकी पीठ में मच्छर काट रहा है या कोई कीड़ा चल रहा है तो उसे हटाने के लिए उजाले की जरूरत होगी क्या? अगर उजाला होगा तभी आपका हाथ वहाँ पहुँचेगा या अंधेरा होने पर भी पहुँच जाएगा? क्या अनुभव है आप लोगों का? दोनों में पहुँच जायेगा न? पीठ के कीड़े को पकड़ने के लिए बाहरी प्रकाश की जरूरत नहीं है। यही है स्वयंप्रकाश। कितनी सुन्दर समझने लायक युक्ति है।

आपके हाथ में लाइट नहीं है और आँख भी नहीं है, जबकि बाहरी वस्तु को देखने के लिए आँख भी चाहिए और लाइट भी। पीठ पर जो कीड़ा चल

रहा है उसे पकड़ने के लिए न आपको आँख की जरूरत है और न बाहरी प्रकाश की। आपके हाथ ने तुरन्त उस कीड़े को पकड़ लिया या मच्छर को भगा दिया, कभी विचार किया कि वह कौन-सा प्रकाश है। वहाँ सूर्य की जरूरत नहीं, चन्द्रमा की जरूरत नहीं, विद्युत की जरूरत नहीं, आँख की जरूरत नहीं। इसी का नाम है स्वयंप्रकाश। वही आप हैं और इसी का नाम नारायण है।

अहं ब्रह्मास्मि या तत्त्वमसि, ये तो वैदिक महावाक्य हैं। पर यहाँ तो इतनी सरल भाषा में छोटे-छोटे उदाहरणों द्वारा यह बता दिया गया है कि तत्त्व-दृष्टि से जीव ब्रह्म ही है। ध्यान रखना, शरीर की दृष्टि से नहीं, तत्त्व-दृष्टि से। एक और उदाहरण से समझिये। एक ओर ज़ीरो वॉट का बल्ब है और दूसरी ओर हजार वॉट का। ज़ीरो वॉट का बल्ब हजार वॉट के बल्ब जैसा नहीं हो सकता। ज़ीरो वॉट का बल्ब है जीव और हजार वॉट का बल्ब है ईश्वर। जीव ईश्वर नहीं हो सकता, लेकिन जो बिजली का कनेक्शन ज़ीरो वॉट के बल्ब में है, वही कनेक्शन हजार वॉट के बल्ब में भी है। बिजली की दृष्टि से दोनों में कोई फर्क नहीं है। इसी तरह तत्त्व दृष्टि से जीव और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं है।

ईश्वर मायोपाधिक होता है, जीव अविद्योपाधिक होता है। ईश्वर की उपाधि शुद्ध होती है, जीव की उपाधि मलिन होती है, इसलिए जीव ईश्वर नहीं हो सकता। आजकल ऐसे अनेक महापुरुष भारतवर्ष में घूम रहे हैं, जो अपने को भगवान घोषित करते हैं। भागवत में वेन की कथा आती है जिसमें वह कहता है, 'अगर हवन करना है तो इन्द्राय स्वाहा मत करो, वेनाय स्वाहा करो, क्योंकि मैं ही ईश्वर हूँ, मैं ही भगवान हूँ।' जानते हो न कि वेन की क्या दुर्दशा, क्या दुर्गति हुई थी! इसलिए इस बात का हमेशा ध्यान रखना कि जीव ईश्वर नहीं हो सकता। जीव तत्त्व-दृष्टि से ब्रह्म है, पर उपाधि की दृष्टि से वह कभी ईश्वर की बराबरी नहीं कर सकता और जो अपने को भगवान कहता है उसके लिये सीधे नरक का दरवाजा खुला रहता है।

आपको एक सत्य घटना बतलाता हूँ। लगभग दस साल पहले मैं दक्षिण भारत में था, वहाँ समुद्र के किनारे घूम रहा था। वहाँ पर देखा कि कुछ दूर से एक महापुरुष आ रहे हैं और उनके अगल-बगल चार-छः लोग चल रहे हैं। पीछे कम-से-कम पचास-साठ लोग हाथ जोड़े चल रहे हैं। हमने सोचा कि कोई विशेष महात्मा होंगे, चलो हम भी मिल लें। हमने जाकर उनके एक सेवक से पूछा कि कौन हैं ये महात्मा। बोले, 'विष्णु भगवान के अवतार हैं।'

अब हमारी जिज्ञासा और बढ़ गई। हम समझ गये कि कुछ गड़बड़-झाला है इधर। मैंने उनसे दूसरा प्रश्न किया, 'कहाँ विराजते हैं ये विष्णु भगवान?' बोले, 'बम्बई में रहते हैं।' मैंने पूछा, 'कब से रहते हैं?' 'हो गये चालीस साल।' मैंने अगला सवाल किया, 'जब बम्बई में 1993 में बम ब्लास्ट हुए थे तब कहाँ थे ये विष्णु भगवान?'

वे हमसे नाराज हो गये। बोले, 'आप मजाक बना रहे हैं हमारे भगवान का।'

'मैं मजाक नहीं बना रहा हूँ। भगवान आते हैं दुष्टों के संहार के लिये, संतों की रक्षा के लिये, धर्म की स्थापना के लिये। 93 में बम्बई बम ब्लास्ट में इतने लोग मारे गये और आप कहते हैं वहीं चालीस साल से रह रहे हैं। कहाँ थे उस समय?'

वे तो हमसे लड़ने पर उतारू हो गए। मैंने कहा, 'देखो, वास्तविक भगवान होंगे तो साष्टांग प्रणाम कर लेंगे और भगवान के नाम पर नाटक करेंगे तो मैं डरने वाला नहीं हूँ। भले वे शाप दे दें, तब भी हम डरने वाले नहीं हैं।'

रोटीराम बाबा एक बात सुनाते थे, 'सती शाप देती नहीं और वेश्या का शाप लगता नहीं। जो वास्तव में महापुरुष होगा, वह अकारण किसी को शाप नहीं देगा और जो बोले कि मैं तुम्हें शाप दे दूँगा, मैं तुम्हें भस्म कर दूँगा, समझ लेना कि यहाँ कुछ गड़बड़ है। वहाँ पर डट जाना, कह देना कि तुम भस्म



कर ही दो, अपनी शक्ति दिखा ही दो हमको।' पर आजकल व्यक्ति कितना धर्मभीरू हो गया है! किसी ने जरा-सा कह दिया कि तुम्हारे पीछे शनि को लगा दूँगा, राहु को लगा दूँगा, तो डर के मारे काँपने लगता है।

अभिप्राय यही कि तात्त्विक दृष्टि से जीव और ब्रह्म की समानता देखनी है। भागवत के आधार पर मैंने आपको सिद्ध कर दिया कि परमात्मा भी स्वयंप्रकाश है और आप भी। आपके पेट में दर्द होता है तो किस कैमरे से, किस लाइट से देखते हैं कि पेट में दर्द हो रहा है? पीठ पर कीड़ा घूमता है, अंधेरा हो तो भी पकड़ लेते हैं हाथ से, वहाँ कौन-सा प्रकाश है? आप उसी स्वयंप्रकाश परमात्मा के अंश हैं। 'ईश्वर अंस जीव अबिनासी, चेतन अमल सहज सुख रासी।' गोस्वामी तुलसीदास जी ने यही तो लिखा है। यह है नारायण का स्वरूप।

भक्तिहीन पुरुषों की गति

विदेहराज निमि ने अगला प्रश्न पूछा, 'महाराज, इतना सब सुनने-समझने के बाद भी जो लोग भगवान का भजन नहीं करते, गुरु की सेवा नहीं करते, ईश्वर के रास्ते पर नहीं चलते, उनकी क्या गति होती है?'

भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः।
तेषामशान्तकामानां का निष्ठाविजितात्मनाम्॥11.5.1॥

व्यक्ति के बाहरी शरीर से उसके मन का पता लग जाता है। व्यक्ति के चेहरे पर अगर शान्ति और प्रसन्नता है तो समझ लेना कि यह व्यक्ति साधक है। व्यक्ति के चेहरे पर अगर कभी कोई वेदना की रेखा भी दिखाई नहीं देती तो समझ लेना यह सिद्ध महापुरुष है। दूसरी ओर, जिस व्यक्ति की आँखें हमेशा चढ़ी रहें, सोच लेना इसके अन्दर तमोगुण और तनाव बढ़ा हुआ है। शरीर और चेहरे से पता लग जाता है कि व्यक्ति के जीवन में क्या चल रहा है। जिनका अपने जीवन पर, अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं है, जो एक आसन में स्थिर नहीं बैठ सकते, जिनकी चंचल बुद्धि और अशान्त चित्त है, कुछ नहीं तो हाथ-पैर ही हिलाते रहते हैं, *तेषामशान्तकामानां*–ऐसे अशान्त व्यक्तियों के जीवन की क्या गति होती है, कृपा करके बताइये।

चमस नाम के योगेश्वर इस प्रश्न का उत्तर देते हैं–

रजसा घोरसंकल्पाः कामुका अहिमन्यवः।
दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान्॥11.5.7॥

जो भगवान के रास्ते पर नहीं चलते, जो ईश्वर का भजन नहीं करते, जो भगवान पर भरोसा नहीं करते, वे रजोगुणी और तमोगुणी लोग होते हैं। तीनों गुणों के सीधे-सरल अर्थ हैं। रजोगुण का सीधा-सादा अर्थ है अत्यधिक व्यस्तता, तमोगुण माने अत्यधिक अशान्ति और सतोगुण माने अत्यधिक शान्ति, सुख और आनन्द।

राजसिक लोग अत्यन्त व्यस्त होते हैं। उनसे कहो, 'मुंगेर में इतना बड़ा सम्मेलन हो रहा है, कथा हो रही है, चलो सुन आते हैं,' तो जानते हो क्या जवाब देते हैं? 'इस समय मरने की भी फुरसत नहीं है!' जैसे अन्तिम समय में धर्मराज उनसे पहले अनुमति लेंगे कि फुरसत में हो या नहीं! धर्मराज को छोड़ो, जो सत्संग में नहीं आते, उनके लिए यमराज आते हैं। अन्तिम समय में पता लग जाता है कि व्यक्ति को धर्मराज के दूत लेने आये हैं या यमदूत लेने आये हैं। कैसे पता लगता है? लोगों को जाते हुए आपने भी देखा है, मैंने भी देखा है। जब 'राम नाम सत्य' हो जाता है, तो ध्यान से देखना। अगर अन्तिम समय में व्यक्ति के चेहरे पर शान्ति दिखलाई दे, वह रोता-चिल्लाता या छटपटाता न हो, तो समझ लेना कि इसको भगवान के दूत लेने आये हैं और यह सीधा भगवान के धाम जा रहा है।

जब हमारे पूज्य गुरुदेव, स्वामी अखण्डानन्द जी का भौतिक शरीर पूरा हुआ, उन्हें एक आसन पर बिठा दिया गया था। अहमदाबाद से उनकी एक शिष्या आई। प्रात:काल दो बजे शरीर छूटा था और वह शिष्या छ: बजे पहुँची थी। गुरुजी आसन पर बैठे थे, आसपास सारे लोग गम्भीर मुद्रा में बैठे थे। शिष्या को पता नहीं था कि गुरुजी का शरीर पूरा हो चुका है। उन्हें टेलीफोन किया गया था कि गुरुजी का स्वास्थ्य थोड़ा गम्भीर है।

वह आकर बहुत देर तक बैठी रही। उसे आश्चर्य हुआ कि सारे लोग इतने गम्भीर क्यों बैठे हुए हैं। गुरुजी शान्त मुद्रा में बैठे थे, चार घण्टे बाद भी गुरुजी के चेहरे से यह पता नहीं लग रहा था कि इनके शरीर से प्राण चले गए हैं। अभिप्राय यह कि जिन्हें भगवान के दूत लेने आते हैं, उनके चेहरे से मालूम चल जाता है। शान्ति के साथ भगवान का नाम लेते हुए, योग, संकीर्तन अथवा नाम-स्मरण के द्वारा जिसका शरीर जाता है, समझो विष्णुदूत लेने आये।

आपने कई लोगों को देखा होगा कि जीवन छोड़ने के एक-दो घण्टे पहले छटपटाते हैं, जोर-जोर से चिल्लाते हैं। कभी-कभी उनको लघुशंका हो जाती है, किसी-किसी को शौच हो जाता है। बुरा मत मानियेगा पर अन्तिम समय

में जिसकी ऐसी दशा हो रही है, सोच लेना कि उसे लेने यमदूत आये हुए हैं। उसकी दुर्गति होने वाली है, यह उसकी पहचान है।

राजसिक मनुष्य

यहाँ पर महाराज निमि ने पूछा है, 'जो व्यक्ति भगवान के रास्ते पर नहीं चलता है, गुरु की सेवा में नहीं लगता है, उसका क्या होता है?' उत्तर में कहा गया है रजसा घोरसंकल्पा:, राजसिक व्यक्ति बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाता है। ऐसी योजना बनाता है कि रातोंरात करोड़पति हो जाए। कभी-कभी जब गड़बड़ हो जाती है तो सबेरे पता लगता है कि करोड़पति से रोडपति हो गया। ऐसी बड़ी-बड़ी योजनाएँ वही सोचते हैं जो भगवान के रास्ते पर नहीं हैं, जो भगवान का भजन नहीं करते हैं। अहिमन्यव:, थोड़ी-सी बात कह दें तो जोर से गुस्सा करेंगे, डाँट देंगे। वे किसी को कुछ समझते नहीं। इतना अभिमान हो जाता है पैसे का! पैसे का बहुत बड़ा मद होता है। कई पैसे वाले लोग सोचने लगते हैं कि हम महात्माओं को भी पैसे से खरीद सकते हैं।

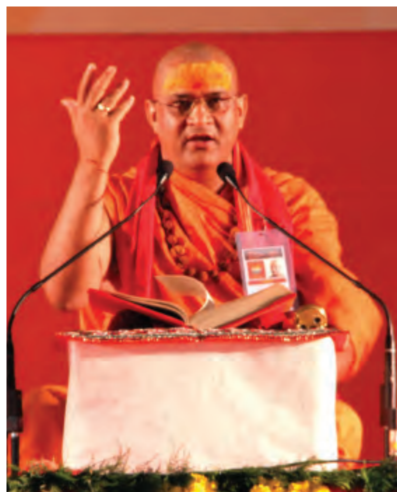
एक जगह वार्षिक सत्संग चलता था, वहाँ के एक आयोजक ने मुझसे कहा, 'स्वामीजी, एक महीने का समय दे दीजिए।' मैंने कहा, 'शायद मैं एक महीने का समय न दे सकूँ, दस दिन या दो हफ्ते का दे दूँगा।' उन्होंने कहा, 'स्वामीजी, क्या बात करते हैं? हमारे यहाँ तो महात्माओं के पत्र आते हैं कि हमारा सत्संग करवाइये। हम आपसे निवेदन कर रहे हैं कि आप समय दीजिये और आप समय देने से मना कर रहे हैं।'

मैंने कहा, 'माफ कीजियेगा, जो आपको पत्र लिखते हैं कि हमारा प्रवचन करवाइये, वे वेश से महात्मा होंगे, वास्तव में नहीं। महात्मा कभी पत्र नहीं लिखता कि हमारा प्रवचन करवाइये। जो ऐसा पत्र लिखता है, वह प्रवक्ता हो सकता है, कथावाचक हो सकता है, साधु नहीं हो सकता।' पैसे वाले लोग सोचते हैं कि साधु हमारी जेब में रहते हैं। वे सोचते हैं कि पैसे से हम साधु को भी खरीद लेंगे, भगवान को भी पा लेंगे। यह भ्रान्ति उन्हीं को होती है जो ईश्वर के रास्ते पर नहीं चलते।

दम्भ और दिखावा

दाम्भिका, यानि बड़ा-बड़ा प्रदर्शन करते हैं। बम्बई में हमारे एक परिचित गुरुजी के भक्त थे। व्यापार में बहुत बड़ा घाटा हो गया। लेकिन फिर भी

बैंक से कर्जा लेकर वही चार-चार गाड़ियाँ, दस-दस नौकर रखते थे। गुरुजी ने कहा, 'तुम्हारा व्यापार ठीक नहीं चल रहा है तो कर्जा लेकर सारा काम क्यों कर रहे हो? अरे, चार की जगह एक गाड़ी रख लो, दस की जगह दो या तीन नौकर रख लो। जैसी परिस्थिति है वैसा काम चलाओ।' उसने कहा, 'महाराज, हमें कुछ भी करना पड़े, लेकिन अपनी प्रतिष्ठा, अपना स्टेटस थोड़े ही गिरने देंगे।' माने जबरदस्ती का



दिखावा। पैसा नहीं है तो भी दिखावा। कर्जा लेकर स्टेटस दिखा रहे हैं। यह जो दम्भ है, कभी-कभी बड़ा नुकसान पहुँचाता है।

रोटीराम बाबा कथा सुनाते थे कि दम्भ का परिणाम क्या होता है। एक बार तीन मित्र पैदल यात्रा करते हुए शाम को किसी गाँव में पहुँचे? तीनों को भूख लगी हुई थी। वे स्वयं भोजन बनाते थे, किसी का बनाया हुआ नहीं खाते थे। गाँववालों ने दूध, चीनी और चावल दे दिया। उन्होंने बढ़िया खीर बनाई और निर्णय किया कि अब तो रात हो गई है, खीर प्रात:काल खायेंगे। तीनों मित्र थे, बात-बात में विनोद हो गया। बोले, 'जो सबसे अच्छा स्वप्न देखेगा, वही सबेरे सारी खीर खायेगा।'

अब खीर इतनी बढ़िया बनी थी कि दो मित्र तो चिंतन में ही लग गए, स्वप्न क्या आवे। अब स्वप्न तो अपने हाथ में है नहीं। वे विचार करने लग गए कि क्या स्वप्न हमको बताना है। तीसरा बुद्धिमान था। जब उसने देखा कि दोनों गहरे चिंतन में डूबे हुए हैं, वह उठा और खीर खाकर मस्ती से सो गया।

प्रात:काल एक मित्र जगा तो दूसरे को जगाने लगा, 'उठो, उठो, सबेरा हो गया। सुनाओ क्या स्वप्न देखा?' दूसरा बोला, 'पहले तुम सुनाओ।' 'ठीक है, सुनो। मेरे स्वप्न में भगवान विमान लेकर आये थे। मुझे विमान में बिठाया, आशीर्वाद दिया, चौथे आसमान में ले गये, ऐसे-ऐसे स्थान दिखाए जो जाग्रत में तो क्या, स्वप्न में भी मैंने पहले कभी नहीं देखे थे। अब तुम बताओ, तुमने क्या देखा?'

दूसरे ने सोचा कि मैं चौथा आसमान बताऊँगा तो मेरा स्वप्न उससे बढ़िया कैसे बनेगा। वह कहने लगा, 'मेरे स्वप्न में भी भगवान आये और मेरे लिये एक नहीं, तीन विमान लाये। एक में वे थे, दूसरे में लक्ष्मीजी थीं और तीसरे में मुझे बिठाया। फिर वे मुझे सातवें आसमान में ले गये और वैकुण्ठ घुमाया, गोलोक घुमाया, साकेत घुमाया। मुझे कहाँ-कहाँ दर्शन कराया! इससे अच्छा स्वप्न तो कोई हो ही नहीं सकता।'

इस बीच तीसरा मित्र मस्ती से सोया हुआ है। उन दोनों ने कहा, 'उठो, तुम भी तो सुनाओ क्या सपना देखा।' तीसरा अंगड़ाई लेकर बोला, 'मुझे मत जगाओ, नींद आ रही है।' 'अरे, उठो! सबेरा हो गया, अपना स्वप्न सुनाओ।' किसी तरह वह उठकर बैठा। कहा, 'मेरे से न ही पूछो तो बेहतर रहेगा।' दोनों बोले, 'कोई बात नहीं, स्वप्न अच्छा नहीं आया होगा तो तीनों मित्र मिल-बाँटकर खा लेंगे। सुनाओ तो सही क्या देखा।'

वह बोला, 'मैंने स्वप्न में देखा कि मेरे हनुमान जी महाराज आ गये हैं। उन्होंने आकर मुझे जगा दिया। अब वे स्वप्न में नहीं, जाग्रत में दिख रहे थे। बोले, उठ। मैं हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। क्या विशाल विग्रह था! *लाल देह लाली लस अरु धरे लाल लँगूर, बज्र देह दानव दलन जय जय जय कपि सूर।* मैंने हाथ जोड़कर पूछा, क्या आदेश है प्रभु? बोले, खीर खा। मैंने बहुत मना किया। मैंने कहा, "हम तीनों मित्र हैं। हमारी शर्त्त है कि जो अच्छा स्वप्न देखेगा, वही खायेगा। मैं तो स्वप्न में नहीं, जाग्रत में आपका दर्शन कर रहा हूँ। मैं यह काम कैसे कर सकता हूँ?" हनुमान जी ने अपना श्रीचरण मेरे सिर पर रखा। इतनी जोर से लगा कि मेरे को ख्याल आ गया, *जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता, चलेउ सो गा पाताल तुरंता।* सिर दबाकर बोले, खाता है कि नहीं? मैं फिर क्या करता, सारी खीर खा गया।'

दोनों मित्र बड़े नाराज हुए, 'अरे, खीर खाकर बहाना बनाता है! तेरे हनुमान जी आये, इतना सब कुछ किया। हम भी तो यहीं सोये थे। हमें बुला लेता, हम भी देखते कि हनुमान जी कैसे तुम्हें जबरदस्ती खीर खिला रहे हैं।' तीसरा बोला, 'मैं तुम दोनों के नाम लेकर बहुत चिल्लाया, लेकिन क्या करता, तुम दोनों यहाँ थे ही नहीं। एक चौथे आसमान में घूम रहा था तो दूसरा सातवें आसमान में! मैं तो चिल्ला-चिल्लाकर परेशान हो गया। मैं जब खाकर सो गया, उसके बाद ही तुम लोग आये होगे।' यह सुनकर दोनों बेचारे माथा कूटने लगे।



जिन्होंने स्वप्न का नाटक किया वे दम्भी थे। दम्भ माने बनावट, दिखावा। ध्यान रखना, ईश्वर और गुरु के रास्ते में दिखावा, बनावट और दम्भ सबसे बड़ी बाधा है। इसे छोड़कर भगवान के रास्ते में आओगे तो भगवान का रास्ता सरल हो जायेगा, भगवान की अनुभूति जल्दी हो जायेगी। जो भगवान का भजन नहीं करते हैं, वे दम्भी हो जाते हैं, *पापा:*, बड़े-बड़े पाप करने लग जाते हैं। आजकल आप लोग 'पापा' शब्द पिताजी के लिए प्रयोग करते हो, लेकिन संस्कृत में पापा का अर्थ क्या होता है? *पाप: पापौ पापा:* माने पापों का ढेर। अगर आपको अंग्रेज या इटालियन बनना है तो पिताजी को पापा बोलना, और भारतीय रहना है तो आज के बाद पिताजी को पापा मत बोलना। पापा का अर्थ संस्कृत में पापों का ढेर होता है। ऐसा अपराध मत करना पिताजी के साथ। आजकल तो लोग 'पापा' से भी आगे बढ़ गये हैं, पिताजी को 'डेड' कहते हैं! बेचारा जिन्दा है, चलता-फिरता है, फिर भी डेड बोलते हैं। अरे, तुम्हें जन्म दिया है, बड़ा किया है, कुछ दिन उन्हें शान्ति से रहने दो। हमारी भारतीय संस्कृति के विपरीत संस्कृति का यह जो अंधा अनुकरण है, वह व्यक्ति को गिराता है। ऐसा अनुकरण वही करते हैं जो भगवान का भजन नहीं करते।

भगवान की पूजा-विधि

अन्त में महाराज निमि ने नव योगेश्वरों से कहा, 'प्रभु! आपने बड़े सुन्दर, प्रेरक और ज्ञानवर्द्धक सत्संग सुनाये। अब आप कृपा करके बताइये कि

भगवान का भजन करने का तरीका क्या है? भगवान का भजन कैसे करना चाहिए?'

> *कस्मिन् काले स भगवान् किं वर्णः कीदृशो नृभिः।*
> *नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम्॥ 11.5.19॥*

यहाँ पर करभाजन नामक योगेश्वर ने बड़ा सुन्दर तरीका बताया है। वे कहते हैं कि जिस समय तुम्हारे जीवन में सतयुग आ रहा हो, उस समय भगवान का भजन ध्यान के द्वारा करो; जिस समय तुम्हारे मन में त्रेता युग आ गया हो, उस समय भगवान का भजन हवन के द्वारा करो; जिस समय तुम्हारे मन में द्वापर युग आ गया हो, उस समय भगवान का भजन मूर्तिपूजा के द्वारा करो, और जिस समय तुम्हारे मन में कलियुग आ गया हो, उस समय भगवान का भजन नाम-संकीर्तन के साथ करो।

थोड़ा विस्तृत रूप से समझ लीजिये। सतयुग का अर्थ क्या होता है? वह स्थिति जिस समय हमारा मन पूर्ण शान्त होता है। आप लोग साधक हैं, कभी-कभी अनुभव करते होंगे कि बिना किसी प्रयास के अचानक मन एकाग्र हो जाता है, शान्त हो जाता है। मन में कोई इच्छा नहीं होती है, कोई विकल्प नहीं होता, शुद्ध सत्त्व गुण होता है। इसका नाम है सतयुग। जब आपका ऐसा मन होवे, उस समय आप ध्यान करेंगे तो तुरन्त ध्यान लग जायेगा।

मन में थोड़ा रजोगुण आ जाए, माने हलचल होने लग जाए, थोड़ी इधर-उधर की बातें आने लग जाएँ तो समझ लेना कि त्रेता आ गया है। अब ध्यान नहीं लगेगा। फिर भगवान की खुशी के लिए हवन करो। अगर रजोगुण और बढ़ जाए, मन में बहुत सारी बातें आने लग जाएँ, समझ लेना कि हवन में भी ध्यान नहीं लगेगा। तब भगवान के विग्रह की पूजा करो, उन्हें स्नान कराओ, सुन्दर पोशाक पहनाओ, माला पहनाओ, भोग लगाओ, आरती करो, यह द्वापर की पूजा है। अगर मन में बिल्कुल शान्ति न रहे, किसी भी कारण से मन तनावग्रस्त और विषादग्रस्त हो जाए, तो ध्यान रखना, उस समय न ध्यान लगेगा, न हवन होगा, न पूजा होगी। उस समय जोर-जोर से *'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'* कीर्तन करना।

ये व्यावहारिक बातें हैं। यकीन नहीं आता तो करके देख लेना। कीर्तन करोगे तो पन्द्रह मिनट के अंदर आपका तनाव, आपका विषाद गायब होने लग जायेगा। कभी-कभी यहाँ सत्संग में गम्भीर चर्चा होती है तो कुछ लोगों

को नींद आने लग जाती है। नींद का मतलब है तमोगुण। जब नींद आती है तब हमारे पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज खड़े हो जाते हैं और कीर्तन कराते हैं। तुरन्त नींद भाग जाती है। तमोगुण के स्थान पर सत्त्वगुण आ जाता है। एक साधक के मन में प्रतिदिन सतयुग आता है, प्रतिदिन त्रेता युग आता है, प्रतिदिन द्वापर युग आता है और प्रतिदिन कलियुग आता है। इन युगों को देखकर अपनी साधना को आगे बढ़ाएँ तो भगवान की प्राप्ति जल्दी हो जाती है और जीवन में शान्ति की प्राप्ति होती है।

मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ कि हमारे पूज्य गुरुदेव, स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की जो कर्मभूमि और योगभूमि है, वहाँ पर इन चार दिनों तक आपके मध्य भागवत चर्चा करने का अवसर पूज्य स्वामी निरंजनानन्द जी की कृपा से प्राप्त हुआ। मैं उनके चरणों में बारम्बार प्रणाम करता हूँ और आप सब लोगों को भी धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इतने प्रेम से भगवान की कथा का श्रवण किया, आनन्द लिया और आनन्द दिया। बोलिये वृन्दावन विहारी लाल की जय!



नोट

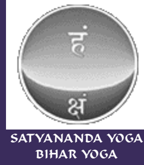


स्वामी गिरीशानन्द सरस्वती जबलपुर (म.प्र.) स्थित साकेत धाम आश्रम के प्रबुद्ध आचार्य हैं, जो अपने सरस कथावाचन और सुबोध सत्संग शैली के लिए देशभर में जाने जाते हैं।

स्वामी गिरीशानन्द जी का जन्म सन् 1963 में उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले में हुआ था और बचपन से ही उन्हें साधु-संन्यासियों के सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बड़े होने पर उनकी भेंट वृन्दावन के मूर्धन्य संत, स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज से हुई, जिनका शिष्यत्व स्वीकार कर उन्होंने एक ब्रह्मचारी के रूप में अपनी आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ की। कालान्तर में वे रामायण और भागवत पर सरस प्रवचन और सत्संग देने लगे।

सन् 2009 में रिखियापीठ में आयोजित श्रीमद् भागवत सप्ताह में कथावाचन के लिए स्वामी गिरीशानन्द जी को निमंत्रित किया गया, और उस अवसर पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने उन्हें संन्यास परम्परा में दीक्षित किया। सन् 2010 में स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती ने जबलपुर में माँ नर्मदा के पावन तट पर स्वामी गिरीशानन्द जी की संन्यास विधि की पूर्णता के लिए विरजा हवन आदि संस्कार सम्पन्न किए।

सम्प्रति स्वामी गिरीशानन्द जी जबलपुर के साकेत धाम आश्रम में निवास करते हैं और देशभर में यात्रा करते हुए विभिन्न शास्त्रों पर सारगर्भित, प्रेरक और प्रबोधक सत्संग देते हैं। जनमानस में धर्म, भक्ति, सदाचार और ज्ञान का संचार करने में उनका प्रयास एवं योगदान सर्वथा सराहनीय है।



SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

'जिस उपाय से व्यक्ति बड़ी आसानी से भगवान को प्राप्त कर ले, वही भागवत धर्म है। केवल विद्वान् व्यक्ति ही नहीं, एक अनपढ़ व्यक्ति भी सरलता से भगवान को कैसे प्राप्त कर सकता है, इसका सरल-से-सरल उपाय, जो भगवान के ही द्वारा बताया गया है, उसी का नाम है भागवत धर्म ...'

सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में 23 से 27 अक्टूबर तक आयोजित विश्व योग सम्मेलन में साकेत धाम, जबलपुर के स्वामी गिरीशानन्द सरस्वती ने उपस्थित प्रतिनिधियों को श्रीमद् भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में वर्णित नव योगेश्वर कथा-प्रसंग का रसास्वादन कराया।

इस प्रसंग में राजा निमि अपने दरबार में पहुँचे नौ योगेश्वरों से एक-एक करके भागवत धर्म, भक्ति, माया, मुक्ति, सद्गुरु, सेवा, वैराग्य आदि विषयों पर गूढ़ प्रश्न करते हैं, जिनका समाधान सभी योगेश्वर बड़े ही प्रबोधक ढंग से करते हैं। स्वामी गिरीशानन्द जी की विद्वत्तापूर्ण तथा विनोदशील प्रवचन शैली से इस संवाद में प्रतिपादित गहन आध्यात्मिक विषय श्रोताओं के हृदय में सहजता से प्रविष्ट हो गए। निष्ठावान् साधकों के लिए यह प्रवचन संग्रह सचमुच एक अमूल्य निधि है।

